प्राच्य शिक्षा रहस्य

पं० हरिदत्त शास्त्री

तृतीय संस्करण

प्रकाशक—
बा० अयोध्याप्रसाद भार्गव
प्रोप्राइटर
कलकत्ता फोटो टाईप कम्पनी
६ चौरंगी, कलकत्ता।

इस पुस्तकको बा० अयोध्याप्रसादजी भार्गवने, अपने चिरंजीव श्रीपृथ्वीनाथ-भार्गवके विवाहोपलक्षमें वितरणार्थ प्रकाशित किया।

मुद्रक—
उमादत्त शर्म्मा
रत्नाकर प्रेस,
११-ए, सैयदसाली लेन
कलकत्ता।

मङ्गलाचरणम्

तथा

उद्देश्य

नमः सच्चित्स्वरूपाय तज्जलानीति रूपिणे।
सर्वाधाराय नित्याय शिवाय प्रणवात्मने ॥

वेदैः सांगैरौपनिषज्ज्ञानयुतोसौ विद्वद्वर्य्यः श्रीयुत-दामोदरदत्तःगण्यो मान्योदारचरित्राचरणो यत्पुत्रो धीमान् कृष्णयुतो दत्तधदान्तः।

श्रीकृष्णदत्ततनयो हरिदत्तशास्त्री श्रीकृष्णदत्तप्रतिभा-विभवावतंसः । श्रीकीर्तिशाह नृपवर्य्यनियोगलब्धः शिक्षाविभागगतसर्वप्रधानमानः ॥

स्मारं स्मारं वेदविदाचारपवित्रीभूतामेतामाभरणं भारतभूमिम् विश्वस्यैवं सर्वजनीनामधुना यत् दृष्ट्वा सर्व-स्वानुभवं तत्कथयामि ॥

यावत्पूर्वाचारसमीरोत्थितशीलप्रेमाभ्राणां सज्जनताशय-

भूमिः, धारावर्षैः शोचमुखैः सिञ्चितगात्रा तावन्मोदं नैति-मनो मत्तमयूरः ॥

शिक्षासाध्यं सर्वमवैमीति विलग्नं चित्तं विद्याभ्यास-रतानां हितकार्ये सच्छास्त्राणां सम्मतिमाश्रित्यगिरा तन्नृणां ब्रूयां छात्रमुदे तद्धितकामः ॥

विज्ञापन

इस प्राच्य-शिक्षा रहस्य लिखने का प्रयोजन यह है कि भारतवर्ष को शास्त्रने कर्मभूमि बतायी है। कर्तव्यकर्मों का ज्ञान और आचरण करनेसे ही मानवजीविनो का सौन्दर्य्य तथा देश, जातिका हित हो सकता है।

मनुष्य जातिमें अनेक जन्मोंका दृढ़ अभ्यास बना हुआ है कि इन्द्रियोंकी विषयवती बृत्तियोंके अधीन होकर कर्तव्य अकर्तव्यका विचार भूल जाना उस अभ्यासको बदल कर शास्त्रीय जीवन बनाना पुरुषार्थ कहा जाता है।

इसलिये जिन-जिन बातोंसे मनुष्यका स्वाभाविक और अस्वाभाविक सम्बन्ध संसारसे है, सबसे प्रथम यह देखना है कि यह सम्बन्ध धर्मपूर्वक है या केवल स्वार्थवश। उन-उन पर विचार कर अपना धार्मिक व्यवहार बनावे और वैसा-वैसा अभ्यास डाले। केवल पुस्तक मात्रके पढ़ लेनेसे धार्मिक जीवन नहीं बनता, बल्कि शास्त्रानुसार आचरण करनेसे वह जीवनी मिलती है, इस 'प्राच्य-शिक्षा रहस्य' में भारतवर्षीय-समुदाचार बनानेकी शिक्षा मनु, महाभारतादि ग्रन्थोंसे चुन-चुन कर रख दी है, इसमें प्रधानतः प्रातःकालसे लेकर सम्पूर्ण दिनचर्य्या, विद्यार्थियोंका कर्तव्य, विद्याके साधन, पिता, पुत्र का सम्बन्ध, भाई-भाईका परस्पर व्यवहार, राजा प्रजाका कर्तव्य, मानवधर्म, सत्य पालन, सहानुभूति, अस्तेय,

भूगर्भ जलविज्ञान, धार्मिक भवननिर्माण, वृक्षारोपणविधि आदि विषय शास्त्रोंसे लेकर संनिवेश किये गये हैं। इसका जब प्रथम संस्करण हुआ, उस समय अधिक पुस्तकें पंजाब टेकसटबुक कमेटीने ले ली और अवशिष्ट जिन्द रियासत तथा सिन्ध प्रांत आदि स्थानों में पाठ्य पुस्तक होकर निकल गई। कई मित्रोंकी प्रेरणासे इसका द्वितीय संस्करण किया गया था। इसमें संशोधन और कुछ बातोंके संवर्धन करनेका भी अवकाश मिला था। अब यह तीसरा संस्करण अनेक परिवर्तन एवं परिवर्द्धन सहित प्रकाशित हो रहा है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि स्कूल-कालेजोंके विद्यार्थियोंमें इसके पढ़नेसे धार्मिक जीवनीका उदय होगा तथा सर्वसाधारण लोग भी लाभ उठायेंगे।

स्वर्गीय गति, आसुरीय सम्पत्ति और दैवी सम्पत्ति आदि विषयोंका पुस्तकमें अनेक स्थानों पर उल्लेख होनेके कारण अलग उल्लेख अनावश्यक समझा गया है।

संभव है छपाई शीघ्रतामें होनेके कारण कुछ अशुद्धियां रह गयी हों। विज्ञ पाठक कृपा कर सुधार कर पढ़ें।

विषय-सूची

* श्रीगणेशाय नमः *

उपोद्घातः

अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ।
सर्वतः सारमादद्यात्पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥
सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् ।
यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यते ॥

संसारमें जितनी विधियां विस्तृत हैं, जब तक उनका प्रयोजन न कहा जाय, तब तक उन कर्मोंमें प्रवृत्ति श्रद्धाके साथ सबकी नहीं होती, अतः प्रत्येक नियम एवं विधिके विस्तार करनेके साथ-साथ उनका फल और प्रयोजन कहीं व्यक्तरूपसे कहीं अव्यक्तरूपसे दिखलाना पूर्वाचार्य शैली है, इसलिए सत्कार्यमें प्रवृत्ति असत्से निवृत्ति करानेके लिए ग्रन्थ-निवन्धादिकोंका प्रयोजन स्पष्ट करना चाहिये ।

मनुष्य-देहका स्पन्दन दो प्रकारसे होता है, एक वह जो इन्द्रियोंकी गति अपने-अपने विषयकी ओर अनियम पर चलती जाती है, उसको वैसे ही चलने देना, दूसरा वह जो इन्द्रियोंके विषयश्रोतको नियमित भावसे अपने अधीन कर चलना । यथा—

"वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता" गीता

जिसने इन्द्रियोंको वशवर्ति किया उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित (पूर्णतापर) है ।

इन्द्रियोंको विज्ञानसे विशुद्ध कर चलनेको आचार कहते हैं—इन्द्रियों * के अधीन विवश होकर चलना नरपशु गति है, इसलिए पूर्वाचार्योंने अपने अनुभव द्वारा मनुष्यके सदाचार पर चलनेका शिक्षासिद्धान्त आविष्कार किया है, अखिल मनुष्य जगत् तीन श्रेणियोंमें विभक्त है, जो कि पूर्वकर्माधीन गुणोंका तारतम्य होना अनादि आर्यसिद्धान्तसे सिद्ध है अतः शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार मनुष्यमें धर्माधर्मके संस्काररूपी सूक्ष्म बीज भालपट्टमें अति सूक्ष्म-रूपसे विद्यमान रहते हैं, मनुष्यको जिस प्रकार शिक्षासंगति व्यव-हारसौकार्यता मिलती है, उसी प्रकार (धर्मादि निखिल भावोंके विद्यमान होने पर भी) वैसे-वैसे भाव उसमें विकाश होते जाते हैं और अन्य जातीय तथा प्रतिपक्ष भाव मुर्झाते जाते हैं, निदान शुभ संस्कारोंकी विद्यमानतामें भी अनियमाचारी अधर्म (दम्भ क्रौर्यादि) के फलोंको उत्पन्न करता है इसी तरह अशुभ संस्कारोंके होने पर भी नियमाचारी पुण्य (मैत्री करुणा मुदितादि) फलोंका देनेवाला होता है यतः—

"उभाभ्यां पुण्यपापाभ्यां मानुष्यं लभते वशः"

केवल पुण्यपरिपाकसे देवयोनि होती है, प्रचुर पापराशिसे नार-कीय गति होती है। पुण्य और पाप (शुभाशुभ) मिश्रण होनेसे मनुष्य जन्म मिलता है, "अर्थात् मनुष्यमें दोनों प्रकारके संस्कार विद्यमान रहते हैं, इसलिए निरन्तर नियमाचरणकी परमावश्यकता है, अन्यथा

* "इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते" इन्द्रियोंके क्षणिक सुखमें निमग्न होकर परलोकको भूल जाना मिथ्याचार है।

विपरीत संस्कारोंके उदय होनेसे पद-पद पर पतित होनेका भय बना रहता है, किसी देहमें पुण्य प्रबल होनेसे दैवी संप्रदायके मनुष्य होते हैं, जो केवल गुरुवाक्य पर श्रद्धा करके शास्त्रीयानुशासनमें प्रवृत्त हो जाते हैं, कहीं पापराशिके अधिक होने पर आसुरीसम्प्रदायके होते हैं, उनमें अभिमान दम्भादि रोग इस प्रकार प्रबल होते हैं, जिससे लज्जा, श्रद्धा, नम्रता, शास्त्रका उपदेशाचरण लेश शेष भी नहीं रहता, नियमाचरण करनेसे उनके भी उक्त मानसिक विषम रोग शान्त हो जाते हैं।

जो मनुष्य केवल पुस्तकोंको रटते * जाते हैं और नियमानुकूल आचरण करनेका विचार नहीं रखते। प्रथम तो उनमें सारस्वत वैभवका विकाश नहीं होता। उनका शुकवत् पठन ग्रामोफ़ोनके रिकार्डके सा है, फलतः जिन शास्त्रीय उपदेशों (विद्याओं) को गुरु-मुखसे श्रवण करे, तदनुसार आचरण करना अपने शुद्ध संस्कारोंको विकाश करना एवं विद्याकी पराप्रतिष्ठाको प्राप्त होनेका अनन्योपाय है,। शब्दशास्त्र रहस्यवेत्ता महामुनि पतञ्जलिका उपदेश है "चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति आगमकालेन स्वाध्यायकालेन प्रवचनकालेन व्यवहारकालेन चेति" चार प्रकारसे विद्याकी उपयुक्ता होना उक्त महर्षिका अनुभव है। अतः विद्याके नित्य मधुर दिव्य

* यत्सारस्वतवैभवं गुरुकृपापीयूषपाकोद्भवं तल्लभ्यं कविनैव नैव हठतः पाठप्रतिष्ठाजुषाम्। कासारे दिवसं वसन्नपिपयः पारं परं पङ्किलं कुर्वाणः कमलाकरस्य लभते किं सौरभं सैरिभः—

फलकी प्राप्ति उक्त प्रकारोंसे प्राप्य है—मनुष्यको त्रिगुणात्मक होनेसे उसके परिपाककी दशा बिना इन नियमोंके प्राप्त नहीं हो सकती।

अतः नित्य समाहित दशा नहीं रहती। बिना समाहित दशाके कर्तव्याकर्तव्यका विचार अति गहन है। ऋग्वेदमें स्पष्ट लिखा है—

"पुरुषधिया नित्यत्वात्कर्मसम्यतिर्मन्त्रो वेदे"

अर्थात् मनुष्य शरीर त्रिगुणात्मक होनेसे कभी किसी गुणकी अधिकता, कभी किसीकी न्यूनतासे आवरण विक्षेप हो जाते हैं—जिससे निरन्तर विज्ञानदशा नहीं रहती। अतः वेदादिसद्विद्याओंका उपदेश किया गया, जिनके द्वारा मनुष्य पुनः विज्ञानदशाको प्राप्त हो जाता है। मनुष्यमें देश, काल, संगति, भोजन, व्यवहारादिके सौकर्यसे जो मलिनभाव आ जाते हैं। उनके प्रक्षालन और उच्चभावोंके विकाश करनेको देश कालावस्थाभेदसे शास्त्रने नियमाचरणकी शिक्षा दी है, जो प्राचीन इतिहासोंसे ज्ञात होता है। जो मनुष्य जितने उच्चकुल या उच्चपदके होते थे, उनको उतनी ही उच्चशिक्षा तथा नियम पर चलनेका अधिक ध्यान दिलाया जाता था। कोई निम्न पुरुष किसीको कोई अपशब्द कह दे या अनुचित कर्म कर दे, तो उसकी उतनी निन्दा नहीं होती, जितने उच्चकुल या उच्चपदाधिकारी पुरुषके स्वल्प भी नीच कर्म करनेसे होती है। अतः निरन्तर शिक्षा और नियम-मार्ग पर अग्रसर होनेको आलस्य, प्रमाद त्यागकर जागरुक होना चाहिये। जितनी ऊँचाईसे गिरोगे उतनी ही अधिक चोट लगेगी। पूर्वकालमें बालकको नियम पर चलाना और उसकी मानसिक

चंचलताको दूर करना यही प्राथमिक शिक्षाका सूत्रपात गिना जाता था, जिससे मनुष्य ज्ञानवान्, मृदुस्वभाव, सत्याचरणशील होते थे। बाल्यावस्थामें जैसे संस्कार बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे गुण उसमें दुर्निवार होते हैं। नियमाचरणसे ही मनुष्यके शुभ संस्कार दृढ़ होनेसे वह सदैश्वर्य, दीर्घजीवी और प्रसन्नचित्त रहता हैं इसीसे उसकी मानसिक सत्ता प्रबल होकर मनोह्लादकारिणी होती है। संसारमें जिसका चित्त दुखी रहता है, उससे बढ़कर कष्ट किसीको नहीं, जिसका मन प्रसन्न रहता है उससे उत्तम सुख और नहीं। योग-शास्त्रका मत है, मनुष्यके सर्वदा प्रसन्न रहनेसे उसके संकल्पमें बल बढ़ जाता है, किन्तु जिनको * प्रातःस्मरणसे ही निन्दा करना, सुनना, दुष्ट चिन्तनादि अघोर भाव ग्रसित कर देते हैं, उनको मानसिक प्रसन्नताका सौभाग्य कब प्राप्त हो सकता है ? सज्जनोंसे मैत्री, दीन दुःखियोंसे दया, उच्चकर्मोंके करनेवालोंसे प्रसन्नता, दुराचारियोंकी उपेक्षा करनेसे मन प्रसन्न रहता है, मनकी प्रसन्नता ही सम्पूर्ण सौख्यकी प्रसवभूमि है, यतः—

"मनः एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"

फलतः उक्त समृद्धियोंकी प्राप्ति नियमाचारी होने पर ही निर्भर है।

नियमाचारी हुए बिना उसके आभ्यन्तरीय शक्तियोंका प्रकाश

---

* परिशुद्धामपि वृत्तिं समाश्रितो दुर्जनोऽन्यान् व्यथयते पवनाशिनोपि भुजगाः परपरितापं न मुञ्चन्ति। पिशुनत्वमेव विद्या परदूषणमेव भूषणं येषां परदुःखमेव सौख्यं शिव शिव ते केन वेधसा सृष्टाः॥

होते-होते स्तब्ध हो जाता है। जिस अवस्था देश समयका हो तदनुसार नियमाचरण करनेसे शाश्वतिक सौख्यकी प्राप्ति होती है—एक ऋषिकी गाथा है कि उसने आठ वर्ष तक अपने बालकको—

"नास्ति सत्यसमो धर्मः"

इस नियमका आचरण करवाया, जिससे उसकी वाणी सत्यरूप हो गई। इसी तरह प्रत्येक नियमके अभ्यासका वैसा-वैसा फल है।

इस प्राच्यशिक्षारहस्यमें ऋषियोंकी पुनीत शिक्षा, आचार, विज्ञान, देशभक्ति आदिका वर्णन किया गया है, जिनके यथावत् आचरण करनेसे मनुष्य दीर्घजीवी और सुखसम्पन्न रहेगा। भारतवर्षीय धार्मिक या व्यवहारिक प्रत्येक शिक्षा महत्त्वपूर्ण, प्रयोजनवती और Scientific Knowledge है। जैसे श्रेष्ठ पुरुषके अपने घर आनेपर या मिलनेपर प्रणाम करना नियम है, तात्पर्य इसका यह है।

"ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रमन्ति यूनः स्थविर आयति"

अर्थात् श्रेष्ठके मिलनेसे प्राणशक्ति सहसा ब्रह्मांडमें चली जाती हैं विनय पूर्वक प्रणाम करना ही उसको यथावत् स्थानमें लाना है, इत्यादि प्रत्येक शिक्षा आशयपूरित हैं। जिनके यथावत् अभ्यास करनेसे जीवनका सौख्य होगा।

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां जानन्तु ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः। उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥

—हरिदत्त शास्त्री

प्राच्य-शिक्षा रहस्य

❀ ईश्वरस्मरणम् ❀

ओ३म् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्ष-
भिर्यजत्राः स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ꣳसस्तनूभिर्व्यसेमहि देव
हितं यदायुः ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ यो ब्रह्माणं व्यदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति
तस्मै तꣳह देवात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ।
भवबीजाङ्कुरजलदा रागाद्याक्षयमुपागता यस्य ब्रह्मा वा
विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥

श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमपरे भजन्तु भवभीता
अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म ॥

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः।
कस्माच्च ते न नमेरन् महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत् तत्परं यत् ॥
त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्

वेत्तासि वेद्यं च परञ्च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥
वायुर्यमोग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतेस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोपि नमो नमस्ते ॥
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्वः ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोसि ततोसि सर्व ॥
सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवायं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोसि विहारशय्याशनभोजनेषु ।
एकोथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥
पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोस्त्यभ्यधिकः कुतोन्यः लोकत्रयेप्यपतिमप्रभावः ॥
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ।
अदृष्टपूर्वं हृषितोस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं पुनः पसन्नो भव विश्वमूर्ते ॥

प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्तमें कदापि शयन नहीं करना ऐसे ही सन्ध्याकालमें भी निद्राका निषेध किया है, बिस्तरसे उठकर मुख प्रक्षालन कर निम्न लिखित मन्त्रोंको पढ़ेः—

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रा वरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं । प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे । प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु प्रियं सर्वस्य पश्यत उतं शूद्र उतार्य्ये ॥

इन मन्त्रोंको पढ़कर अपने दोनों करतलोंको देखे, जहाँतक बने प्रातःकाल मांगल्य पदार्थों का दर्शन करे।

तदनन्तर बहिर्भूमि या जाजरूरमें विरमूत्रका परित्याग कर समाहितचित्तसे शौच, दन्तधावन करे अर्थात् दो पात्रोंमें जल रक्खे जब तक हस्तपादादि मृत्तिका से प्रक्षालन न करे तब तक मुख-प्रक्षालनका जल न छुए।

उच्चारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने।
भोजने ध्यानकाले च षट्सु मौनं समाचरेत् ॥

मल मूत्र त्यागती बेर, मैथुनकाल, दन्तधावनके समय, भोजनकाल, सन्ध्या समयमें मौनव्रत धारण करे। प्रतिपद्, अष्टमी, चतुर्दशीके अतिरिक्त नित्य दन्तधावन करे। अंगुलीसे दन्तधावन करना निषिद्ध है। अनन्तर षोड़श गण्डूषसे मुख, जिह्वा प्रक्षालन कर निम्न लिखित प्रातःस्मरणीय मन्त्रोंका पाठ करे।

प्रातःस्मरणम्

आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने।
जन्मान्तरसहस्त्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते ॥

प्रातःस्मरामि रघुनाथमुखारविन्दं मन्दस्मितं मधुरभाषि विशाल भालम्। कर्णावलम्बिचल-कुण्डलशोभिगण्डं कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभि-रामम् ॥ ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च। गुरुश्च शुक्रः शनि-राहुकेतवः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ भृगु-र्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिरश्च मनुः पुलस्त्यः पुलहश्च गौतमः। रैभ्यो मरीचिश्च्यवनश्च दक्षः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः। पुण्य-श्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः ॥ अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमाँश्च विभीषणः। कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥

सप्तैतान्संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम् ।
जीवद्वर्षशतं सोपि सर्वव्याधिविवर्जितः ॥
अहल्या द्रौपदी सीता तारा मन्दोदरी तथा ।
पञ्चकंना स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीकव्यासाम्बरीषसुक-शौनकभीष्मदाल्भ्यान् । रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन्पुण्यानिमान्परमभागवतान्नमामि ॥
धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन पापं प्रणश्यति वृकोदरकीर्तनेन । शत्रुर्विनश्यति धनञ्जयकीर्तनेन माद्रीसुतौ कथयतो न भवन्ति रोगाः ॥

तदनन्तर स्नान करें, स्नान सन्ध्याके पूर्व भोजन करना सर्वथा पतित होना है, सिवाय रोगीके नित्य स्नान करनेसे मनुष्य सदैव नीरोग और पवित्र रहता है ।

स्नानके गुण ।

गुणाः दश स्नानशीलं भजन्ते बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः । स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः ॥

नित्य स्नान करनेसे बल, रूप और कण्ठका स्वर, मधुर होना वर्णकी शुद्धि, सुखकर स्पर्श, देहमें उत्तम गन्ध, शुद्धता, लक्ष्मी, सुकुमारता, सुन्दरता मिलती हैं।

स्नान दो प्रकारके होते हैं, उष्णोदक और शीतोदकसे, जिनको शीतोदकसे स्नान करनेका अभ्यास है, उनको रक्त पित्तबाधा नहीं होती है उष्णोदक कमजोर रोगीके लिए हितकर है तथा उन देशोंमें जहाँ गंगाका प्रवाह नहीं है, स्नानमें जिस तरह अंग प्रत्यंगोंका शुद्धि-पूर्वक धर्म है इसी प्रकार प्राणायामसे अन्तःशुद्धि, ज्ञान स्थिर होता है। प्रात-सायं-संध्या और प्राणायाम करनेसे मुख्य लाभ यह है कि मन स्थिर हो जाता है, जिसका मन स्थिर है जो काम दूसरा एक दिनमें नहीं समझ सकता है, उसको वह एक घंटेमें जान लेता है इसलिए शास्त्रमें सन्ध्या करनेको नित्यकर्म कहा गया है और प्राणायाम सन्ध्याका मुख्य अंग है।

मनु—

नित्यं स्नात्वा शुचि कुर्यात् देवर्षिपितृ तर्पणम्।

स्नान करके नित्यकर्म देव-ऋषि पूजन तर्पण करे।

उद्वर्तनं कफहरं मेदस प्रविलापनम्।
स्थिरिकरणमंगानां त्वक्प्रसाद करं परम्॥

व्यायाम और दिनचर्या

चक्षुर्जलञ्च व्यायाम पादाधस्तैलसेवनम्।
कर्णयो मुर्द्धिनितैलञ्च जरा व्याधि विनाशनम्॥

नेत्रोंको ठण्डे पानीसे धोना नित्य-व्यायाम करना पैरपर, शिर पर तैल लगानेसे वृद्धावस्थाका आक्रमण नहीं होता है ।

सन्ध्यावंदनकी तरह व्यायाम भी स्वस्थ और धार्मिक जीवनका एक मुख्य अंग है । मनुष्यको नित्य किसी-न-किसी प्रकार व्यायाम अवश्य करना चाहिए । जो मनुष्य आलस्य वश व्यायाम नहीं करता है वह स्वस्थ नहीं रह सकता है, यद्यपि काम करते समय मनुष्य चलता फिरता रहता है, पर उसकी संकल्प-शक्ति भिन्न रहती है, जो कार्य करे उसमें मनकी संकल्प-शक्तिका होना भी आवश्यक है। अतः व्यायाम करनेसे संकल्प यह रहता है कि मैं व्यायाम शरीरके पूर्ण आरोग्यके लिए कर रहा हूं । आयुर्वेदमें लिखा है:—

> लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोग्निर्मेदसः क्षयः ।
> विभक्त घनगात्रत्वं व्यायामा दुपजायते ॥

शरीरका हलका होना काम करनेकी स्फुर्ति होना जठराग्निका ठीक रहना मेदसका निकल जाना अङ्ग हृष्ट पुष्ट रहना इत्यादि ये लाभ व्यायामसे होते हैं । व्यायाम कितने ही प्रकारके होते हैं । उनमेंसे देश काल अवस्थानुसार जो जिसे उपयुक्त प्रतीत हो करे ।

व्यायाम प्रातःकालमें करना चाहिए । प्रत्येक अंग-प्रत्यंगके हिलने डोलनेसे शरीरगत सब शिरा खुलकर रुधिरकी स्वच्छगति व्यायामसे हो जाती है, व्यायामसे भौतिक शरीरकी शुद्धि और प्राणायामसे अन्दरकी शुद्धि हो जाती है, प्राणायाम भी अन्दरका व्यायाम है, इससे अन्दरकी धातु और सूक्ष्म शरीर शुद्ध हो जाता है मन पवित्र हो जाता है, सन्ध्या करनेका मुख्य अंग प्राणायाम माना

गया है। व्यायाम तथा सन्ध्या वन्दनका पूर्ण लाभ वही ले सक्ता है। जो प्रात: उषाकालमें जागना जाने भारतीय जीवनका कार्यक्रम उषाकालमें प्रारम्भ होता है। जैसे आधुनिक लोग भी अपना कार्य-क्रम, समय निर्णय कर नित्यका Timetableबनाते हैं वह प्रकृतिके साथ सोचकर बनावे तो अवश्य लाभप्रद हो, परन्तु इन्द्रिय भोग मात्र जिनका जीवन व्यवहार है वे इस लाभको नहीं पा सकते हैं। उषाकालसे दिन-चर्याका कार्यक्रम वेदोंवे बताया है—

अश्वावति गो मतिर्नो उषासो। ऋग०

यहांसे कार्य प्रारम्भ होता है, पहले उषाकालमें जागना सीखें।

मनु—ब्राह्मे मूहुर्ते बुद्धयेत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।

यह समय सूर्य उदयसे दो घण्टे पहले प्रारम्भ होता है उस समय मनमें मानो स्पन्दन हो जाता है, रातभरके गिरे हुए वृक्ष भी उस समय सीधे हो जाते हैं, पक्षियोंका स्वर क्या मधुरिमा लिए होता है,वह मन्द सुगन्ध पवन भाग्यशालियोंको मिलती है उस समय प्रकृतिका दृश्य हृदयको शान्त करता है विचारकी धाराओंका विकाश उस समय होता है यही समय है जिसमें मनुष्य जीवनमें सत्वगुणका स्वाभाविक विकाश होता है। ईश्वराराधन और विचार करनेका समय यही है इस समय दधीमन्थन करनेसे जो नवनीत निकलता है उसमें प्राणपुष्ट करनेकी शक्ति रहती है इस अवसरपर शयन करनेमें सत्वगुणका विकाश नहीं होता है। नीति-कारने कहा है:—

कुचैलिनं दन्तमलावधारिणीं
वह्वाशिनं नित्यकठोर भाषिणम् ।
सूर्योदये चास्त मयेच शायिनम्
विमुञ्चतिश्रीरपि चक्रपाणिनम् ॥

बहुत भोजन करनेवाला और दन्तका मैल न धोनेवाला, कठोर भाषण करनेवाला, सूर्य उदय और सूर्यास्तमें शयन करनेवालेके पास से लक्ष्मी शक्ति दूर भाग जाती है ।

धर्म

"धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः"

धर्मकी रक्षा करनेसे सब वस्तु रक्षित हो जाती है धर्मका जहाँ नाश हुआ वहाँ सर्वस्व नष्ट हो जाता है।

धर्म क्या है उसका लक्षण क्या है धर्मका मुख्य अर्थ आत्मनिष्ठा है "धारणात् धर्म मित्याहु हुँ" जिस शक्तिने सारे विश्वको धारण किया है वह धर्म है। सारा विश्व आत्मामें स्थित है अतः—

आत्मज्ञान प्राप्त करना ही धर्म है "यतो अभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्म" जिससे कल्याण मार्ग और मोक्ष सिद्ध हो वह धर्म है।

अयंतु परमो धर्म यद्योगेनात्म दर्शनम्

यही परम धर्म है जो आत्म साक्षात्कार होता है सत्य है

"जे राख्यो निज धर्मको ते राख्यो कर्तार"

जिसने अपने धर्मकी रक्षा की है भगवान् उसकी रक्षा करते हैं।

विदुरजीने धृतराष्ट्रको कहा दस प्रकारके मनुष्य कभी धर्म जान नहीं सकते हैं यथा—

"दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निवोधमे मत्तः प्रमत्त उन्मत्त क्रुधश्चाति विभुक्षित त्वरमाणश्च भीरुश्च श्रान्त कामीश्च लोलुपः

घमण्डी, पागल, शराबी अर्थात् शराब पीनेवाला, परस्त्री-गामी, जुआ खेलनेवाला अनाचारी भटकने वाला क्रोधी, खा

जल्दबाज, डरपोक, थका हुआ, कामी, क्रोधी, लोभी, इतनी प्रकारकी प्रकृति वाले धर्म जान ही नहीं सकते, अर्थात् धर्म चाहते हों तो ऊपर लिखी बुराइयों को अपनेमें से तो हटा दें।

धृति क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोध दशकं धर्म लक्षणम्

जिनमें ये १० लक्षण विद्यमान हों वह धर्म प्राप्त कर सकते हैं— अतः इन बातोंपर ध्यान देकर अपनाना चाहिये। वह दस लक्षण धर्मके यह हैं पहला धृतिका अर्थ गीतामें इस प्रकार किया है:— "धृत्या यया धारयते मन प्राणेन्द्रिय क्रिया योगेनाऽव्यभिचारिण्या धृति सा पार्थ सात्विकि" जिस धैर्य शक्तिसे मन, प्राण, इन्द्रियोंको एक लक्ष्य पर लगाये हुए रहताहै, वह सात्विक अर्थात् यथार्थ धैर्य है, मन जिससे अपने वशमें आत्मनिष्ट रहे।

दूसरा; क्षमा—क्षमाशस्त्र करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति, अतृणे पतितो वह्नि स्वयमेवोपशाम्यति।

क्षमा शस्त्र जिसके हाथमें है, दुर्जन उसको कोई कष्ट नहीं पहुंचा सकता है, जैसे बिना तृणके अग्नि प्रज्वलित नहीं हो सकती है, ऐसे ही उनकी शान्ति बनी रहती है।

तीसरा; दम—इन्द्रियोंको अपने वशमें रखो, जैसे म० भा०
दान्तः शमपरः शाश्वतम् परिक्लेशं न विन्दति नच तप्यति
दान्तात्मा दृष्ट्वा पर गतां श्रियम्॥

जिसमें दमन करनेकी शक्ति होती है, वह नित्य शान्तिमें रहता है, कभी उसे ताप नहीं होता है।

चौथा; अस्तेय—जिस वस्तुमें धर्मपूर्वक अपना स्वत्व (हक) नहीं, उसको न लेना, इसको अस्तेय याने ईमानदारी कहते हैं. महाभारतमें कहा है; यथा—

येर्थाः-धर्मेण ते साया येऽधर्मेण धिगस्तुतान् धर्मं वैशाश्वत लोके नतं जह्यात कदाचनः।

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते येकादशे वर्षे सहमूलं विनश्यति॥

धर्मपूर्वक काम करनेसे जो तुमको प्राप्त होता है, वह धन ठीक है। धिक्कार है उन्हें जो अधर्मसे धन इकट्ठा करते हैं। अन्यायसे उपार्जित धन चाहे दश साल तक टिक भी जाय, पर एकादश वर्ष प्रारम्भ होने न पावेगा कि वह समूल नष्ट हो जायेगा, इसलिये अधर्मसे राज भी मिले तो उसे ठुकरा दो। अधर्मके राज्यसे दुर्यो-धनका सत्यानाश हुआ।

पांचवां; शौच शरीर इन्द्रिय मन इनको भीतर बाहरसे पवित्र रखना और सब व्यवहार, घर मकान सब चीजोंको साफ सुथरा रखना चाहिए।

अद्भिर्गात्राणि शुद्धन्ति मनः सत्येन शुद्धते।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेनशुद्धते॥

छठां-शरीरकी और सब चीजें शुद्ध जल आदिसे होंगी। मनकी

शुद्धि सत्यसे। जीवात्मा विद्या तथा तपस्यासे शुद्ध होता है, बुद्धि ज्ञानसे शुद्ध होती है। अर्थात् जिस साधनसे जो चीज शुद्ध होत ी, उससे उसको नित्य शुद्ध कर रखना चाहिये। पांच इन्द्रियनिग्रह ज्ञानेन्द्रिय (आंख, नासिका, जिह्वा, त्वचा, कर्ण; पाञ्च कर्मेन्द्रिय हाथ, पैर, वाणि. आदि) इनको अपने वसमें रखना चाहिये।

"वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञाप्रतिष्ठिता।"

जिसकी इन्द्रियां अपने बसमें हैं, उसकी प्रज्ञाप्रतिष्ठा होती है जो केवल खाना पीना भोग करना ही जानते हैं, वे नर-पशु हैं, धर्मके अधिकारी नहीं हैं।

सातवां; धी-बुद्धिके होनेसे ही मनुष्य सब जीवोंमें श्रेष्ठ है? बुद्धि उसे भगवान्‌ने दी है। बुद्धिका प्रकाश जिससे हो वह आचरण रखना चाहिये। गायत्री मन्त्र सब मन्त्रोंसे श्रेष्ठ इसीलिये है कि उसमें 'धीयो यो नः प्रचोदयात्' बुद्धिके उच्च विकाशकी प्रार्थना की गई है।

जिसे बुद्धि है, उसीको ही बल है। बुद्धिहीनको कोई कार्यकी शक्ति नहीं है। "बुद्धिर्यस्यबलं तस्य निर्बुद्धिस्तु कुतो बलं।" जिससे मनुष्यको कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यका ज्ञान होता है।

आठवां; 'विद्याधनं सर्वधनः प्रधानं' विद्या ही एक परम धन है। विद्या दो प्रकारकी हैं, एक परा, दूसरी अपरा। परा विद्या उपनिषदों में आत्मनिष्ठाकी प्राप्त करानेवाली कही है, जिससे सब दुःख दूर होते हैं। दूसरी अपरा विद्या है। उपनिषदोंमें "द्वेविद्ये वेदितव्ये।" यह वाक्य आता है—दो विद्या जैसे;—एक आत्म-ज्ञानकी विद्या, दूसरी कर्म-ज्ञानकी, कर्म-ज्ञानकी विद्यासे मृत्युतकको रोक सकता है।

आत्मज्ञान विद्यासे मुक्त हो जाता है। हजार माता पितासे भी कहीं बढ़कर विद्या हमको प्रेम करती है। "शास्त्रं हि वत्सलतरं मातृपितृ सदृशः" विद्याकी महिमा नीतिकारने कही है—

"विद्यानाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तं धनं,
विद्या भोगकरि यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरु।
विद्या वन्धुजनो विदेश गमने विद्या परं दैवतम्,
विद्या राजसुपूजिता नहीं धनं विद्याविहीनपशुः ॥

सत्य—

सत्यं धर्मस्तपो योग सत्यं ब्रह्मसनातनम् ॥
सत्यं यज्ञ परंप्रोक्तं सर्वसत्ये प्रतिष्ठितम् ॥

नौवां–सत्य ही परम धर्म है। वेदमें सबसे पहला उपदेश "सत्यंम्वद" यह है, ब्रह्मका लक्षण "सत्यं ज्ञानमनन्तंब्रह्म" सत्य लक्षण है। 'सत्यमेवजयते' इसलिए नित्य सत्यकी ही जय होती है। "सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप" ठीक है। भगवान्‌की वंदना देखो—"सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनीं निहितश्च सत्ये सत्यस्य सत्यमृत सत्य नेत्रं सत्यात्मकंत्वं शरणं प्रपन्ना ॥

"नहीं सत्यात्परोधर्मः" सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। धन्य हरिश्चन्द्र तुम्हारे सत्यको। परन्तु सत्य किसको कहते हैं, इसे गम्भीर और स्थिर बुद्धिसे विचार करना चाहिये। सत्यका ज्ञान और परमात्माका ज्ञान एक ही बात है, क्योंकि परमात्माका स्वरूप सत्य है। सत्य वह वस्तु है जिसका कभी नाश नहीं होता। नाश होनेवाली और रूप बदलने वाली सब वस्तुएं असत्य हैं। शास्त्रमें

आया है कि सदैव सत्य बोलो । परन्तु सत्य वास्तवमें क्या है, जानना परमावश्यक है। शास्त्रमें कहा है कि—

"सत्यं हि तत् प्राणी हितायतस्यात"

जिससे यथार्थ प्राणियोंका कल्याण हो वह सत्य है। उसीको दूसरे शब्दोंमें आत्मा कहा है।

दसवां—**अक्रोध**—क्रोधो पुरुष अपनी जीवन धर्म, और धनका नाश कर देता है। क्रोधको चाण्डाल पापी कहा है, इसलिए क्रोधको जीतना परमधर्म है।

यथा—"अक्रोध्येन जयेतक्रोधम्" शान्तिसे क्रोधपर विजय करे। यह दस लक्षण धर्मके हैं। आश्रम धर्म। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ, संन्यस्त। उनके पृथक् धर्म हैं। विशेष धर्म :—जिनका स्मृति और पुराणोंमें विस्तारसे वर्णन किया है। वर्ण धर्म ब्राह्मणका क्षत्रियका वैश्य और शूद्रका पृथक-पृथक् है। राजधर्म जैसा भीष्मजीने कहा है उसे देखिये। ये विशेष धर्म हैं। सामान्य धर्म मनुष्य मात्रका एक है। आत्मनिष्ठ उक्त दस लक्षण चोरी न करना, शराब न पोना, परस्त्री को माता समझना, किसीको दुःख न देना, सबसे साधु व्यवहार रखना, सत्य कहना, ये सबके समान धर्म हैं ॥

ये लक्षण जिनमें विद्यमान हों, उनका धर्ममय जीवन है। यह धर्मके साधारण लक्षण जो सब धर्मोंमें पाये जाते हैं।

सन्ध्या ।

रात्रि और दिनकी सन्ध्यामें जो ईश्वर स्मरण वेदविधि अनुसार किया जाय, उसे सन्ध्या कहा है । इसके करनेसे बुद्धिका विकाश, तेज और बल बढ़ता है ।

आचमनम् ।

ॐ विष्णुर्विष्णुर्हरिर्हरिर्हरि :

इस मन्त्र से तीन बार आचमन करे ।

पवित्रीकरणम् ।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

इस मन्त्र को पढ़ता हुआ चारों ओर कुशा से जल सींचे ।

भूनोत्सारणम् ।

ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संश्रितः ।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥

इससे चारों ओर जल छिड़के ।

शिखाबन्धनम् ।

गायत्री मन्त्र पढ़ता हुआ शिखा बांधें ।

आसनपूजनम् ।

ॐ पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनशोधने विनियोगः ।

आसन पर जल छोड़े, पुष्प चन्दन चढ़ावे ।

प्रार्थना

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता । त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ।

उँगलियोंसे अंगको पवित्र करे ।

दीपपूजनम् ।

ॐ सुप्रकाशाय दीपनाथभैरवाय नमः ।

इस मन्त्र को पढ़ते हुए जल चन्दन अक्षत पुष्प चढ़ावे ।

प्रार्थना ।

ॐ सुखं भवतु कल्याणमारोग्यं सर्वसम्पदा । मम शत्रुविनाशाय दीपज्योतिर्नमोस्तुते ॥

दीपकके सामने हाथ जोड़ देवे ।

संकल्प ।

तिल कुश जल हाथमें लेकर संकल्प पढ़े ।

ॐ अद्यैतस्य ब्रह्मोह्नि द्वितीयप्रहरार्द्धे श्री-

श्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे कलियुगे कलि प्रथमचरणे पुण्यक्षेत्रे अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं सन्ध्योपासनं करिष्ये ।

प्राणायामः ।

ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीछन्दोऽग्निर्देवता प्राणायामे विनियोगः—

प्राणायाम केवल प्रणव (ॐ) से पूरक, कुम्भक, रेचक करे या सप्तव्याहृतियुक्त गायत्री से करे ।

ॐ भूः ओं भुवः ओं स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं

एक प्राणायाम करे ।

अङ्गस्पर्शः ।

ॐ वाक् वाक् ॐ प्राणः प्राणः ॐ चक्षुः चक्षुः ॐ श्रोत्रं श्रोत्रं ॐ नाभिः ॐ हृदयम् ॐ कण्ठः ॐ मुखम् ॐ शिरः ॐ शिखा ॐ बाहुभ्यां यशोबलम् । ओं करतलकरपृष्ठे

इससे अंगोंको छूवे ।

करन्यासः ।

ॐ भूः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ॐ भुवः तर्जनीभ्यां नमः ॐ स्वः मध्यमाभ्यां नमः ॐ महः अनामिकाभ्यां नमः जनःकनिष्ठिकाभ्यां नमः ॐ तपः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

अंगको छूवे ।

अङ्गन्यासः ।

ॐ भूः हृदयाय नमः ॐ भुवः शिरसे स्वाहा ॐ स्वः शिखा वौषट् ॐ महः कवचाय हुं ॐ जनः अस्त्राय फट् ।

अङ्गको छूवे ।

प्रातःकाल के आचमन मन्त्र का विनियोग ।

ॐ सूर्यश्चमेति ब्रह्माऋषिः प्रकृतिश्छन्दः सूर्यो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ।

सूर्यको जल छोड़ देवे ।

आचमन का मन्त्र ।

ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्यूपतयश्च मन्यूकृ-

त्यातेभ्यःपापेभ्यो रक्षन्ताम् यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु यत्किञ्चिद्दुरितं मयि इदमह मम्मृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ।

तीनबार पढ़े और तीन बार जल पीवे ।

सायंकालके आचमन का विनियोग ।

जल छोड़े ।

ॐ अग्निश्चमेति रुद्रऋषिः प्रकृतिश्छन्दो-ऽग्निर्देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ।

आचमन का मन्त्र ।

ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्यु-कृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम् यदह्ना पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु यत्किञ्चिद्दुरितं मयि इदमह-मम्मृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ।

तीन बार पढ़े और जल पीवे ।

मार्जनका विनियोग।

ॐ आपो हिष्ठेत्यादिऋचस्य सिन्धुद्वीपऋषि-र्गायत्रीछन्द आपो देवता मार्जने विनियोगः।

जल छोड़े।

इस मन्त्रको पढ़ता हुआ कुशासे अपने ऊपर जल छिड़कता जाय।

मार्जनका मन्त्र।

ॐ आपो हिष्ठामयो भुवः ॐ तान ऊर्जे दधातन ॐ महेरणाय चक्षसे ॐ यो वः शिवतमो रसः ॐ तस्य भाजयते हनः ॐ उशंतीशिव मातरः ॐ तस्मा अरंग मामव ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ ॐ आपो जनयथा च नः।

ॐ सुमित्रियानः आपः ओषधयः सन्तु।

इसको पढ़ शिरमें जल सींचे।

ॐ दुर्मित्रिया तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः।

इससे जमीन पर जल डाले।

ॐ द्रुपदादिवेत्यस्य कोकिलो राजपुत्र

ऋषिरनुष्टुप्छन्द आपो देवता सौत्रामण्यवभृथे विनियोगः ।

मन्त्रः ।

ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ।

अघमर्षण मंत्र विनियोगः ।

ॐ ऋतं चेत्यघमर्षणऋषिरनुष्टुप्छन्दो भाववृत्तो देवताऽश्वमेधावभृथे विनियोगः ।

अघमर्षण मन्त्रः ।

इस मन्त्रको पढ़ते हुए दहिने हाथमें जल लेकर बायें नासिकासे सूंघ कर डाल दे फिर हाथ धो डाले ।

ॐ ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयद्दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।

सूर्यार्घ्यम् ।

गायत्री मन्त्रको पढ़ता हुआ तीन बार अर्घ्यमें जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प डाल कर सूर्यको अर्घ्य देवे ।

मन्त्रः ।

एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते ।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥

सूर्योपस्थान मन्त्रका विनियोग ।

ॐ उद्वयमित्यस्य हिरण्यस्तूपऋषिरनुष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः ।

मन्त्रः ।

ॐ उद्वयन्तमसस्परिस्वः देवं देवत्राः सूर्यमगन्मज्योतिरुत्तमम् ।

ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् ।

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः आप्राद्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।

गायत्रीका आवाहन ।

ॐ तेजोसीति परमेष्ठी प्रजापतिऋृषिर्यजुर्जगती छन्दः आज्यं देवता गायत्र्यावाहने विनियोगः ।

ॐ तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ।

ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्य पदसि । नहि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदोमाप्रापत् ॥

विनियोगः ।

ॐ तत्सवितुरिति विश्वामित्रऋषिः गायत्री छन्दः सवितादेवता जपे विनियोगः ।

ध्यानम् ।

ॐ गायत्रीं त्र्यक्षरां बालां साक्षसूत्रकमण्डलुम् ।
ऋग्वेदकृतोत्सङ्गां कौमारीं ब्रह्मवादिनीम् ॥
ब्रह्माणीं ब्रह्मदैवत्यां ब्रह्मलोकनिवासिनीम् ।
आवाहयाम्यहं देवीमायान्तीं सूर्यमण्डलात् ॥
आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि ।
गायत्रि च्छन्दसां मातर्ब्रह्मयोने नमोस्तुते ॥

तदनन्तर गायत्रीमन्त्रको जप करे । जपके बाद हाथमें जल लेकर इस मंत्रको पढ़े ।

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥

प्रार्थनामन्त्रः ।

ॐ पाहि मां देवि मातस्त्वं सत्यं शौचं पराक्रमम् ।
लाभेष्टराज्य मानं च ज्योतिरूपे नमोस्तु ते ॥

सन्ध्या भजनके अभ्याससे तब लाभ हो सकता है, जब मनुष्य प्रथम यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, धृति, मिताहार, शौच) इनका अभ्यास करे । नियम (तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वर-पूजन, सिद्धान्तवाक्यश्रवण, ह्री, मति, व्रत) इनका पालन

करे, तब आसनका अभ्यास करे याने बैठनेका तरीका सीखे, जिस बैठकसे चित्त स्थिर हो, श्वास-प्रश्वास ठीक रीति पर चले, उसको आसन कहते हैं। आसन प्रधानतया पद्मासन, वीरासन, सिद्धासन, स्वस्तिक, मयूरासनादि हैं।

योनिं वामेन संपीड्य मेढ्रादुपरि दक्षिणम् ।
भ्रूमध्ये स्वमनो लक्षेत् सिद्धासनमिदम्भवेत् ॥

बायें पैरकी एँड़ी योनिस्थान पर जमावे दहिने पैरकी एँड़ी मेढ़ पेडूके ऊपर रखकर दोनों भ्रूके बीचमें मनको लगाकर बैठे, यह सिद्धासन है।

ऊर्वोरुपरि संन्यस्य कृत्वा पादतले उभे ।
पद्मासनं भवेदेतत्सर्वेषामपि पूजितम् ॥

दोनों पैरके तलोंको ऊरुके ऊपर रखकर बैठे, यह पद्मासन है।

जानुनोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे ।
ऋजुकायसमासीनं स्वस्तिकं तत्प्रचक्ष्यते ॥

दोनों पैरके तलोंको दोनों जानुओंके भीतर करके सीधा बैठे तो स्वस्तिक आसन होता है। तात्पर्य किसी भी ऐसी मुद्रासे बैठे कि दोनों घुटने जमीन पर लग जायँ। सीधा बैठ कर दृष्टि नासिकाके अग्रभाग पर लगे उसीका नाम आसन है।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥

पवित्र स्थानमें स्थिर चित्तसे कुशा, ऊर्णवस्त्र, मृगचर्मके आसन पर बैठे।

समं कायशिरो ग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥

छाती, शिर, ग्रीवा इन तीनोंको सीधे एक समान करके नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमानेसे आसन सिद्ध होता है।

इसके अनन्तर प्राणायामका अभ्यास इस प्रकार करे कि पहले लम्बी श्वास लेनेका कुछ दिन अभ्यास डाले। श्वास नासिका से खींचना सीखे, जब ठीक आसन पर बैठना सीख जाय, तब अभ्यास करे। अपानवायु जो वायु नीचे जाती है प्राणवायु जिसकी गति ऊपरको होती है। शनैः शनैः लम्बी श्वास लेनेसे इनका अनुभव कर ले, इससे कुण्डलिनी शक्ति, षट्चक्र का पता भी लगने लगेगा। बायीं नासिका बंद कर अन्दरसे वायु खींचनेका अभ्यास करे, इसे पूरक कहते हैं। अन्दरकी वायु खींचकर रोकनेको कुम्भक कहते हैं। रोकी हुई वायुको शनैःशनैः बाहर छोड़नेको रेचक कहते हैं। प्रारम्भकालमें १६ बार पूरक ६४ बार कुम्भक ३२ बार रेचक करे अर्थात् प्रणवके उच्चारणमें जितना समय लगे। प्राणायाम करनेसे अन्दरकी नाड़ियाँ शुद्ध होकर वृत्ति

स्थिर हो जायगी, किन्तु प्राणायामके अभ्यासीको प्रथम यम, नियम, आसन भली भांति अभ्यासमें लाने चाहियें। प्राणायाम आठ प्रकारके हैं—भस्त्रिका, शीतली, शीत्कारिणी, प्लावनी, मूर्च्छा आदि। इनमें भस्त्रिका के अभ्याससे कुण्डलनी जागृत करनेमें सहायता होती है। शीतली करनेसे श्रान्ति निवारण होती है।

सन्ध्या वैदिक कर्म बताया है, इसके अनन्त तन्त्र शास्त्रके अनुसार अपने इष्ट देवका जप-पूजन करना चाहिये। इन मन्त्रोंको सिद्ध करनेसे मनुष्य की सब कामना सफल होकर अन्तमें ब्रह्मज्ञान होता है। इष्टदेवके मन्त्र ग्रहण करनेको दीक्षा संस्कार कहते हैं। इस दीक्षा संस्कारसे मनुष्यमें देवांश आ जाता है।

यथा—

रसेन्द्रेण यथा विद्धः अयः सौवर्णमतांव्रजेत्।
दीक्षा विद्धास्तथादेह शिवत्वंलभते ध्रुवम् ॥

जैसे रासायनिक प्रयोगसे लोहा स्वर्ण हो जाता है, इसी प्रकार दीक्षा संस्कारसे मनुष्य शिवत्वको प्राप्त करता है। तभी तो शास्त्रमें लिखा है—"शिवोभूत्वा शिवं यजेत्" जब यह देह शिव हो जाय, तब वह शिव अर्थात् कल्याण प्रद भगवानकी पूजाका अधिकारी होता है।

आणवी दीक्षा क्रम दीक्षा साम्राज्य दीक्षा पूर्णाभिषेक आदि दीक्षाके कितने ही भेद हैं।

तान्त्रिक दीक्षाका सबमें प्रारम्भिक क्रम षट्चक्र भेदन कुण्डलनी उत्थानसे चलता है। तान्त्रिक दीक्षाकी मातृकाभूमी षड्चक्र भेदन है। रीढकी हड्डीके बायें दाहिने दो नाड़ी हैं, जिन्हें ईडा पिंगला नामसे कहते हैं। कभी ईडाकी विशेष गतिसे ज्ञान वैषम्य रहता है। इन दोनोंकी समान गति होनेपर इन दोनोंके मध्यमें जो नाड़ी है, उसे सुषुम्णा कहते हैं। ईडा पिंगलाकी समान गतिमें सुषुम्णाका विकाश होता है। सुषुम्णाके सञ्चारमें ही मंत्र जप योग समाधि हो सकती है। इसके बीच षट्चक्र इस प्रकार हैं :—

गुदाके ऊपर मूलाधार चक्र ४ दलका, बीचमें पृथ्वीबीज (लं) डाकिनी शक्ति ब्रह्मा ४ दलोंमें चार बीजाक्षर अर्थात् जब प्राणशक्ति अभिधनिरूपा बुद्धिसे टकराकर यहां सञ्चार करती है, उस समय वं शं षं सं यह शब्द यहां परामें होते हैं इसीको कामरूप पीठ कहते हैं। यहां पर ब्रह्म डाकिनी शक्ति है। सृष्टीक्रम शब्दक्रम सब यहां चलता है, इस स्थान पर ध्यान लगानेसे आरोग्य और सारस्वत प्रसाद मिलता है। इसके ऊपर षड्दलपद्म स्वाधिष्ठान है, यहां राकिनी शक्ति विष्णुका निवास है, यहांसे बं भं मं यं रं लं ये छ वर्ण बनते हैं। इसके ऊपर नाभिस्थानमें माणिपुर नामका चक्र है, यहां लाकिनी शक्ति रुद्रका स्थान है, यहां डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं ये दस वर्ण बनते हैं। इसके ऊपर अनाहत चक्र वाणलिंग द्वादश कमल काकिनी शक्ति कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं ये वर्ण बनते हैं। कण्ठमें विशुद्धचक्र सदाशिव शाकिनी शक्ति अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ये वर्ण होते हैं। इसके ऊपर भ्रूमध्यमें आज्ञाचक्र हाकिनी शक्ति महादेव हूं क्षौं

ये दो वर्ण हैं। शिरमें सहस्रदल गुरु स्थान बीचमें बोधिका विन्दु-नादउन्मनि आदि स्थान हैं।

सदाचारमें गुरु ध्यान—

"श्रीनाथादि गुरुत्रयं गणपतिं सिद्धत्रयं भैरवं सिद्धौघं वटुकत्रयं पदयुगं दूति क्रमं मण्डलम् वीरानष्ट चतुष्कषष्टी सहितं वीरावलि पञ्चकम् श्रीमन् मालिनि मन्त्र राज सहितं बन्दे गुरोर्मण्डलम्"

मन्त्रोंमें बड़ी चमत्कारिणि शक्तियां विद्यमान हैं। किन्तु अनुचित करनेसे बड़ी हानियां भी हैं। पुस्तक पर देखकर मन्त्र कभी नहीं जपना चाहिये, ऐसा करनेसे हानि है। केवल सिद्ध मन्त्र जो है उन्हें चाहे जप ले जैसे ॐ नमः शिवाय इत्यादि ये मन्त्र भी गुरु मुखसे लेनेमें बलवान् होते हैं।

मन्त्रोंके द्वारा मनुष्य अपनी इच्छित शक्तियोंका विकाश कर सकता है और शक्ति सञ्चार, शक्तिपात भी हो सकता है। इसलिये मन्त्रों की अधिष्ठातृ शक्तियां कही गई हैं क्योंकि उपासनासे मनुष्य किसी न किसी शक्तिका ही विकाश चाहता है चाहे मोक्षशक्ति, ज्ञानशक्ति, विद्याशक्ति, विवेकशक्ति, शौर्यशक्ति, धन शक्ति किसी न किसी शक्तिका विकाश चाहता है, इसलिए शक्ति प्रधान होते हैं। मन्त्र और देवताका सम्बन्ध मनुष्यके साथ देखना चाहिये कि किस मन्त्रके जप करनेसे किसको सिद्धि होती है। सब मन्त्र सबको सिद्धि

देने वाले नहीं, भिन्न भिन्न मन्त्र भिन्न व्यक्तिके लिये हैं। इसलिए साधकके राशी, नामके साथ सिद्ध-साध्य ऋण-धन आदि चक्रोंकी शुद्धि मिलानी होती है।

इसके बाद उस मन्त्रके जो जिसके लिए मिलाया गया है। पहले १० संस्कार कराने चाहिएं। १ जमन, २ दीपन, ३ बोधन ४ ताड़न, ५ अभिषेक, ६ विमली करण, ८ तर्पण, ९ गोपन, १० आप्यायन इन दस संस्कारोंको कर तत्पश्चात् मन्त्रोंके कुल्लुका जिह्वाशोधन सेतू महासेतू मन्त्र चैतन्य मन्त्रार्थ आदि ज्ञान लेने चाहिये किस देवताके कौन कौन कुल्लुका आदि हैं।

इन सब संस्कारोंके अनन्तर उस मन्त्रका पुरश्चरण कर ले तब मन्त्र सिद्ध होता है, उस सिद्धमन्त्रको जप करे, ईष्टदेवता पूजन, कवच, स्तोत्रपाठ, हवन, बलिवैश्वदेव तर्पण आदि करे। सच पूछिए तो आजकल इतने समय तक पुस्तकोंको रटनेपर और कालेजोंकी डिग्रियां प्राप्त करने पर भी मनुष्योंमें वह विद्याका चमत्कार क्यों नहीं होता है। यतः विद्या प्राप्तिसे सब दुःख दूर होकर शिवात्मक जीवन होता था, पर उपासना मन्त्रोंके वीजाक्षरोंको मनमें स्थान न देनेसे यह दशा है।

. पाणिनी आचार्य ऐतिहासिक आचार्य हो गए, उसने शिवकी उपाशनामें शैव वीजाक्षरोंको मनमें रोपण किया था। कवि कालिदासने महाकालीकी उपासनामें काली बीजाक्षरोंसे यह शक्ति पाई इत्यादि। प्रायः जिनका भी चमत्कारिक जीवन हुआ है, वे सब जन्मान्तरमें या इस जन्ममें बीजाक्षरोंके प्रसादसे सिद्धिको प्राप्त हुए हैं।

अग्निहोत्र ।

हाथमें पुष्प, अक्षत लेकर यह मन्त्र पढ़े ।

ॐ विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

तब अग्निको इस मन्त्रसे प्रज्वलित कर पूजन करे ।

ॐ भूर्भुवः स्वः द्यौरिव भूम्ना पृथवीव वरिम्णा तस्यास्ते पृथवि देव यजनि पृष्ठेऽग्नि-मन्नाद मन्नादाया दधे ।

प्रार्थना ।

ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदंहुताशनम् ।
समिद्धर्णं ज्वलितं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥

ॐ वैश्वानराय नमः पाद्यं जलं चन्दनं अक्षताः पुष्पाणि धूपं दीपं नैवेद्यम् ।

इस मन्त्रको पढ़ता हुआ घृताहुति देवे ।

ॐ भूरग्नये प्राणाय स्वाहा

ॐ भुवः वायवे अपानाय स्वाहा

ॐ स्वरादित्ये प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा

ॐ सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन स्वाहा ।

हवनके प्रतीक ।

१ समिधाग्निन्दुवस्यत घृतैर्बोधयता तिथिम् आस्मिन्हव्यौ जुहोतन स्वाहा ।

२ सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन अग्नये जातवेदसे स्वाहा ।

३ तन्त्व समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि बृंहच्छोचाय विष्ठय स्वाहा ।

४ उपत्वाग्ने हविष्मती घृताचीर्यंतु हर्य्यत जुषस्व समिधो मम ।

५ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। सूर्य्योव्वर्चो ज्ज्योतिर्व्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।

६ सजुर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्त्याजुषाणो अग्निर्व्वेतु स्वाहा।

७ सजुर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्याजुषाणः सूर्यो व्वेतु स्वाहा।

८ यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये यदेनश्चकृमा वयमिदन्तदवयजामहे स्वाहा।

तब गायत्री मन्त्रसे यथासंख्य हवन करे।

ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये।

ॐ इन्द्राय स्वाहा इदमिन्द्राय।

ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय।

पूर्णाहुति ।

ओं अग्ने नय सुपथाराये ऽस्मान्विश्वानि-देव वयुनानि विद्वान् युयुध्यस्मज्जुहुराण मेनो भूयिष्ठां ते नम ऽउक्तिं विधेम स्वाहा ।

ओं पूर्णादर्वि परापतसुपूर्णा पुनरापत वस्नेव विक्रीणावहा ईषमूर्जं शतक्रतो स्वाहा ।

प्रार्थना ।

ओं तनूनपाग्नेसि तन्वं मे पाहि ओं आयुर्दाग्नेस्यायुर्मे देहि ओं वर्चोदाग्नेसि वर्चो मे देहि अग्ने यन्मे तन्वा ऊन तन्म आपृण ।

ओं शतं जीव शरदो वर्द्धमानः शतं हेमन्ताच्छतमुवशन्तात् शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पती शतायुषा हविषेनं पुनर्हुः ।

ओं नमस्ते गार्हपत्याय नमस्ते दक्षिणाग्नये । नमो आहवनीयाय हमावेद्यै नमो नमः ॥

कालेवर्षतु पर्जन्यः पृथिवी शस्यशालिनी ।
देशोयं क्षोभरहितः कर्मिणः सन्तु निर्भयाः ॥

ॐ तत्सत्

ॐ

दशश्लोकी आत्मचिन्तन ।

नभूमिर्न तोयं न तेजो न वायु-
र्नखं नेन्द्रियं वा न तेष
अनैकान्तिकत्वात्सुषुप्त्येकसिद्ध-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥१॥

नवर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा
न मे धारणाध्यानयोगादयोऽपि ।
अनात्माश्रयाहं ममाध्यासहीना-
त्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥२॥

न माता पिता वा न देवा न लोका
न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति ।
सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वा-
त्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥३॥

स्वरूपावबोधो विकल्पासहिष्णु-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥७॥

न जाग्रन्न मे स्वप्नको वा सुषुप्ति-
र्न विश्वो न वा तैजसः प्राज्ञको वा ।
अविद्यात्मकत्वात्त्रयाणां तुरीय-
स्तदेकोऽशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥८॥

अपिव्यापकत्वाद्धि तत्त्वप्रयोगा-
त्स्वतःसिद्धभावादनन्याश्रयत्वात् ।
जगत्तुच्छमेतत्समस्तं तदन्य-
त्तदेकोऽवशिष्टः शिवःकेवलोहम् ॥९॥

न चैकं तदन्यद्द्वितीयं कुतः स्या-
न्न वा केवलत्वं न चाकेवलत्वम् ।
न शून्यं न चाशून्यमद्वैतकत्वा-
त्कथं सर्ववेदान्तसिद्धं ब्रवीमि ॥१०॥

न सांख्यं न शैवं न तत्पाञ्चरात्रं
न जैनं न मीमांसकादेर्मतं वा ।
विशिष्टाऽनुभूत्या विशुद्धात्मकत्वा-
त्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥४॥

न चोर्ध्वं न चाधो न चान्तर्न बाह्यं
न मध्यं न तिर्यङ्न पूर्वा परा दिक् ।
वियद्व्यापकत्वादखण्डैकरूप-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥५॥

न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतं
न कुब्जं न पीनं न ह्रस्वं न दीर्घम् ।
अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वा-
त्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥६॥

न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा
न च त्वं न चाहं चायं प्रपञ्चः ।

स्वरूपावबोधो विकल्पासहिष्णु-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥७॥

न जाग्रन्न मे स्वप्नको वा सुषुप्ति-
र्न विश्वो न वा जैजतः प्राज्ञको वा ।
अविद्यात्मकत्वात्त्रयाणां तुरीय-
स्तदेकोऽशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥८॥

अपिव्यापकत्वाद्धि तत्तत्प्रयोगा-
त्स्वतःसिद्धभावादनन्याश्रयत्वात् ।
जगत्तूच्छमेतत्समस्तं तदन्य-
त्तदेकोऽवशिष्टः शिवःकेवलोहम् ॥९॥

न चैकं तदन्यद्द्वितीयं कुतः स्या-
न्न वा केवलत्वं न चाकेवलत्वम् ।
न शून्यं न चाशून्यमद्वैतकत्वा-
त्कथं सर्ववेदान्तसिद्धं ब्रवीमि ॥१०॥

ब्रह्माकार वृत्तिको इस प्रकार बना सकता है प्रथम सृष्टिके स्थूलभावोंसे अपने आपको छानबीन करके देखे कि मैं इन स्थूल-भावोंका पुंज हूं या इनसे पृथक्। अनन्तर शारीरिक सूक्ष्म और उपचारिक भावोंसे खूब छानबीन कर देखे कि मैं इन सब भावोंसे निराला अनन्त हूं। ब्रह्म स्थितिको जो उसे छानबीन करनेसे प्राप्त हुई हो उसका निरन्तर अभ्यासमें लाकर अनुभव करे यथा—

(१) मैं भूमिका पिण्ड नहीं हूं, जल, तेज, वायु भी नहीं हूं, आकाश भी नहीं हूं और कोई इन्द्रियविशेष भी नहीं हूं, ना इन सब इन्द्रियोंका समूह ही हूं, क्योंकि वह अन्तवान् हैं। परन्तु मैं वह सुषुप्तिका साक्षी जो तत्त्व इन्द्रिय अवस्था आदिको छान-बीन करनेसे अवशिष्ट रह जाता है। त्रिगुणातीत अनन्य शुद्ध शिव (आत्मा) हूं।

(२) मैं यथार्थमें ब्राह्मणादि जाति नहीं हूं, न वर्णाश्रम धर्मका आचरणस्वरूप हूं, न योगके ध्यानधारणात्मक हूं, क्योंकि मैं और मेरा, यह जो ज्ञान है उसका आधार अनात्मा है और स्वरूपज्ञान ज्ञान हो जानेसे मैं और मेरा यह अदृश्य हो जाते हैं। अतः मैं वह शुद्ध अनन्य त्रिगुणातीत शिव (आत्मा) हूं।

(३) मैं न तो किसीकी माता, पिता, देवगण, न लोकगण, न वेद, न यज्ञ, न तीर्थ हूं, क्योंकि सुषुप्ति अवस्थामें जो दशा हो जाती है, वही मैं नहीं हूँ, अतः मैं वह शुद्ध अनन्त दृष्टिगोचरसे परे त्रिगुणातीत आत्मा हूं।

(४) न तो मैं सांख्यशास्त्र, शैवसिद्धान्त, न वैष्णवधर्मके पाञ्च-

रात्र न जैनमत न मीमांसकादि मत हूं और न इस प्रकारके कोई भी मतसे मेरा सम्बन्ध है, क्योंकि शुद्ध आत्माके अनुभवसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मेरा शुद्धस्वरूप है अतः मैं वह शुद्ध अनन्य त्रिगुणातीत शिव (आत्मा) हूं।

(५) न तो मैं ऊपर (स्वर्गादिलोक) न नीचे (पातालादि लोक) न अन्दर (सूक्ष्म शरीरलोक) न बाहर (जीवलोक) न बीच (अन्तरिक्ष) न तिर्छा (नक्षत्रमण्डल) न सामने (दृश्य-जगत्) न पीछे (आगन्तुक जगत्) इत्यादि मैं हूं क्योंकि सर्वव्यापक होनेसे मैं ऐसा हूं जिसका पृथक् पृथक् अंश नहीं हो सकता, अतः मैं शुद्ध अनन्य त्रिगुणातीत शिव (आत्मा) हूं।

(६) न मेरा शुक्लवर्न है न कृष्ण, न रक्तवर्ण न पीतवर्ण न कुबरा न स्थूलदेही न छोटा न ऊँचा हूं और मैं अरूप भी नहीं हूं, क्योंकि प्रकाशस्वरूप होनेसे। अतः मैं शुद्ध अनन्य त्रिगुणातीत शिव आत्मस्वरूप हूं।

(७) मैं उपदेशक, न शास्त्र, न शिष्य, न शिक्षा और तू तथा मैं यह भेद जो है वह भी मैं नहीं हूं और यह जो जगत्‌रूपी प्रपञ्च है वह भी मैं नहीं हूं, क्योंकि स्वरूपका ज्ञान होनेपर संशयकी निवृत्ति होनेसे शुद्ध अनन्य त्रिगुणातीत चैतन्य शिव (आत्मा) हूं।

(८) जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाएँ भी मेरी नहीं हैं, क्योंकि इन दशाओंका साक्षी विश्व तैजस प्राज्ञ भी मैं नहीं इन तीनों अवस्थाओंके अविद्यात्मक होनेसे इनसे तुरीय शुद्ध अनन्य शिव (आत्मा) मैं हूं।

(६) यथार्थमें सबमें व्यापक होनेसे दूसरेके आश्रयसे रहित स्वयं प्रकाश और स्वतः सिद्ध होनेसे यह सम्पूर्ण जगत् तुच्छ भ्रान्तिरूप होनेसे मैं शुद्ध अनन्य शिव (आत्मा) हूं।

(१) न मैं एक ही हूं और उससे दूसरा फिर कहां हो सकता है, न केवल हूं न अकेवल ही हूं मैं शून्य भी नहीं अद्वैत होनेसे अशून्य भी नहीं, तब सम्पूर्ण वेदान्त की सिद्धि किस प्रकार वर्णन करूं।
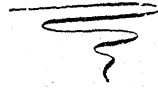
तप

मनुष्यकी विद्याका विकाश, भजन, उपासनाकी सिद्धिके लिए तपकी परम आवश्यकता है, जब तक वह तप नहीं करता है, तब तक विद्याका केवल आधिभौतिक विकाशके अतिरिक्त आधिदैविक विकाश हो नहीं सकता है, कारण मनुष्यके भाषण-संकल्प शारीरिक व्यवहारसे जो मल उत्पन्न होकर उसके ज्ञानके विकाशका आवरण हो जाता है। (जिस तमःपटलवत् आवरणके होनेसे बहुत प्रयत्न करने पर भी उसकी बुद्धिमें दैवी विकाश नहीं होता है) वह मल उसका तप करनेसे ही दूर होता है, तब उसमें दैवी उज्ज्वल चमत्कारिक विकाश सञ्चरित होने लगता है। अतः प्रधानतया जिन तीन (शारीरिक, मानसिक, वाचिक) मलोंसे आवरण होता है, प्रथम उनको शुद्ध करना ही तीन प्रकारका तप इष्टसिद्धिके लिये है।

"देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते" ॥

देवता, गुरु, विद्वान्‌का सत्कार करना, पवित्र रहना, नम्र स्वभाव बनाना, ब्रह्मचर्य पालन करना, अहिंसाव्रत रखना यह शारीरिक तप है।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

कभी दुःख देनेवाली या उद्वेग करनेवाली बात न बोले, सत्य और प्रिय हितकारी वचन कहनेका अभ्यास डाले।

स्वाध्याय याने आत्मज्ञानकी पुस्तकोंका पढ़ना और विचारनेका अभ्यास करना यह वाणीका तप है।

मनः प्रसादसौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानस उच्यते॥

मनको प्रसन्न रक्खे, सौम्य स्वभाव बनावे, इन्द्रियोंको अपने अधिकारमें रक्खे अर्थात् मनको वशमें रक्खे, यह मानसिक तप है। इन तीन प्रकारके तप करनेसे सम्पूर्ण मल दूर होकर विद्याका स्वच्छ प्रकाश मनुष्यमें सञ्चार होने लगता है।

ऊपर तीन प्रकारके तपका वर्णन शारीर, वाणी और मनका एक दूसरेसे अधिक फल देनेवाले हैं। मनका तप नित्य मनको शुद्ध रखना है।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यद्वचस्यन्यद् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्॥

महात्मा और दुरात्माके लक्षण करते हुए शास्त्रकारने यही बताया है, जिनकी मन वचन कर्ममें एक ही धारणा है वे महात्मा हैं, जिनके मनमें और जबानमें और कर्ममें भिन्न-भिन्न बात है, वे दुरात्मा हैं। मनुजीने कहा है—

"सत्यंब्रुयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रुयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्म सनातन॥"

सत्य भाषण करे और प्रिय भाषण सुन्दर मांगलिक शब्दोंको जो सुननेमें प्रिय हों, अप्रिय कठोराघात करनेवाला सत्य न कहे, मुँहचोपड़ी दिखलावटी खुशामद भी न करे। मन्दोदरीने कहा था—

"बहवो पुरुषा राजन् सततं प्रिय वादिनः।
अप्रियस्यच पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभ॥"

राजोंको मुँहचोपड़ी मीठी-मीठी बात कहने वाले बहुत मिल सकते हैं। किन्तु हितकी कड़ी बात कहने वाले निःस्वार्थ महात्मा कम हैं और उन उपदेशोंके सुननेवाले राजे तो बिरले ही कदाचित् हों। सत्य क्या है ? इस पर एक बड़ी पुस्तक लिखी जाय, तब शास्त्र और अनुभवका ज्ञान हो, हम दो शब्दोंमें समाप्त करते हैं "सत्यं हि तत् प्राणि हिताय यस्यात्"

मलका नाश तपाये बिना हो नहीं सकता है, इसलिए जीवनको उज्वल करनेको कुछ न कुछ तपस्या अवश्य करनी चाहिये, जैसे ऊपर मन, वाणी, शरीरके तपके सम्बन्धमें दिग्दर्शन किया है। किन्तु मनुष्यका शरीर त्रिगुणात्मक होनेसे उसकी प्रत्येक क्रिया और प्रतिक्रिया भी विभिन्न गुणवति होती है, जैसे गीतामें लिखा है,

'श्रद्धया परया तप्तं तपस्त्रिविधं नरैः;
अफला कांक्षिभियुक्तै सात्विकं परिचक्षसे॥
सत्कार मान पूजार्थं तपो दम्भेन चैवयत्,
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलम ध्रुवम्,

मूढ ग्राहेणात्मनोयत् पीड़या क्रियते तपः,
परस्योत्सादनार्थम्बा तत्तामसमुदाहृतम् ॥"

ऊपर जो तीन प्रकारके तप कहे हैं, सत्पुरुष निःस्वार्थ श्रद्धाके साथ जो इनमेंसे किसी तपको करते हैं, वह सात्विक तप है, जो तप अपने सत्कार मानके निमित्त किया जाता है, वह राजसी, हठमें आकर दूसरोंको कष्ट पहुंचानेके निमित्त जो किया जाता है, वह तामसी तप है।

स्वरोदय

ध्यायेत्तत्त्वं स्थिरे जीवे अस्थिरे न कदाचन ।
इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयस्तथा ॥

किसी भी कार्यके प्रारम्भ करनेके प्रथम चित्त स्थिर होना आवश्यक है, अस्थिर चित्तसे काम करना उचित नहीं, स्थिर चित्त होकर जो काम किया जाय, उसमें सिद्धि होती है, इसका ज्ञान स्वरोदयसे मनुष्य सुगमतासे प्राप्त कर सकता है। स्वरशास्त्र प्रधानतया चन्द्र, सूर्य याने (इडा, पिङ्गला) नाड़ियोंके प्रवाहसे चित्तके भावकी स्थिर, अस्थिर दशाको दिखाते हैं और किस कार्यकी किस स्वरमें करनेसे सिद्धि होती है।

जैसे—

"चन्द्रनाडीप्रवाहेण सौम्यकार्याणि कारयेत्" ।

अर्थात् बायें स्वरके चलनेमें सम्पूर्ण सौम्यकार्य प्रारम्भ करे।

यात्रा करनेमें चन्द्रस्वर शुभ और प्रवेश करनेमें सूर्यस्वर शुभ होता है।

रात्रिमें चन्द्रमाके स्वरको न चलावे, दिनमें सूर्यस्वरको कम करे, इसके अभ्यास करनेसे मनुष्य बहुत उच्च सिद्धिको प्राप्त करता है। चन्द्रमा पूर्व और उत्तर दिशामें रहता है, सूर्य पश्चिम, दक्षिण दिशामें

रहता है, इसलिए दाहिनी नाड़ी चलनेपर दक्षिण पश्चिम, वाम नाड़ी चलनेपर पूर्व, उत्तर यात्रा न करे।

सोकर उठते समय जो स्वर चलता हो, उसी हाथकी हथेलीसे मुख स्पर्श करनेसे दिन भर आनन्द रहेगा।

निम्न लिखित कार्य इड़ा याने वाम नाड़ीकेप्रवाहमें करे। देवताकी प्रतिष्ठा, दान, यात्रा, विवाह, वस्त्र, अलंकार, शान्तिकर्म, औषधी, रसायन, स्वामीसे मेल, मित्रमेल, वाणिज्यकर्म, गृहप्रवेश, विद्यारम्भ, मन्त्रसिद्धि यह सब इड़ा नाड़ीमें शुभ हैं।

जितने क्रूर कर्म हैं, वे सब नौका, उग्र देवता उपासना, पशुओंका बेचना, शिल्पकार्य, यंत्र-तंत्र, हाथी–घोड़ा लेना, व्यायाम (कसरत) नदी तैरना, शत्रुको दण्ड, शस्त्र उठाना, युद्ध, राजदर्शन, भोजन, स्नान ऐसे कर्म पिंगला (दाहिने स्वर) में करनेसे लाभदायी है।

जब क्षणमें बायां क्षणमें दाहिना स्वर चले, उस दशाको सुषुम्णाका प्रवाह कहते हैं, ऐसी दशामें संसारका कोई कार्य न करना केवल ईश्वरका भजन करना चाहिये।

भोजन

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ।

आहारशुद्धिसे सत्त्वगुण प्राप्त होता है, सत्त्वसे प्रज्ञा स्थिर होती है। पशुकी गति और मनुष्यकी गतिमें मुख्य बात्त यह ही है, पशु को जहाँ भी सुभीता हो वहीं भोजन, शयन, मल, मूत्रोत्सर्गकर देता है, लेकिन मनुष्यको प्रथम भक्ष्य क्या है और अभक्ष्य क्या, इसका विचार होता है, भक्ष्य अर्थात् खानेके योग्य मनुष्यको इसका विचार धर्मशास्त्र पर है, मनुकी शिक्षामें आगे प्रकट है, भोजन तीन प्रकारके हैं। मनुष्य भी तीन प्रकारके होते हैं। ज्ञानवृद्धि, दीर्घायु, आरोग्य सात्त्विक भोजनसे हैं, रस्य, स्निग्ध, स्थिर और हृद्य सात्त्विक भोजन हैं, ज्यादे नमकीन, कड़वे, खट्टे, ऐसे भोजन राजसी होनेसे रोगके करनेवाले हैं, दुर्गन्धियुक्त, जिनका रस सूख गया हो, बासी इत्यादि तामसी भोजन आयुका नाश करनेवाले होते हैं। मनुष्य जो कुछ खाते हैं उसके तीन भाग होते हैं, स्थूलभाग मल होकर निकल जाता है, मध्यमभाग मांस शोणित तैयार करता है, सूक्ष्म भागसे मन बनता है। जिस तरहके अन्न मनुष्य खाता है, वैसा उसका मन बनता है, यह निरंतर विचारणीय स्थल है. यदि अच्छे विचार एवं अपने शिवसंकल्प चाहते हों, तो मनको मलिन या शुद्ध बनाना आपके भोजनके अधिकारमें है। आर्यलोग पाकशाला

शुद्धस्थानमें निर्माण करते थे और रसोई बनानेवाले भी शुद्धाचरणयुक्त होकर अन्नको बनाते थे, संसर्गदुष्ट, भावदुष्ट क्रियादुष्ट, यदि हो गये तो उसका परित्याग कर देते थे, यह प्रमाद उनमें न था कि स्पर्शास्पर्श और भक्ष्याभक्ष्य पर विचार न करें, तभी उनकी विद्या,समाधि दीर्घायु आदि सम्पत्तियां स्थिर रहती थीं, पशुओंका भोजन केवल क्षुधाका परिहारक है, मनुष्योंका धर्माचरणपूर्वक देहरक्षाके निमित्त है, इसलिये भोजनकी शुद्धिमें निरंतर जागरुक रहे। संसर्गदुष्ट अन्नके खानेमें चंचलता बढ़ती है, स्वभावदुष्ट, क्रियादुष्टसे मनःशोक भोगने पड़ते हैं, कसैले, अति क्षारयुक्त भोजनमें दुर्बलता, अति आहार करनेसे अल्पायु, शुद्ध पवित्र अन्न खानेसे स्थिरता, दुग्धपान करनेसे मनकी पवित्रता, शाकभोजनसे निर्मलता, फल अधिक खानेसे गम्भीरता व नीरोगता होती है। निदान पवित्र देशमें ईश्वरार्पण करके लघुपाकभक्ष्य पदार्थ भोजन करनेसे दीर्घायु प्राप्त होती है, संसर्गदुष्ट, यातयाम (बासी) गुरुपाक भोजन अहितकर है।

"दीपो भक्षयये ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते।
यदन्नं भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी प्रजा" ॥

दीपक अन्धकारको खाता है, इसलिये वह कज्जलको उत्पन्न करता है, बस जिस तरहके अन्न पुरुष खाता है, वैसी ही उससे सन्तान होती है, जबतक भोजन शुद्ध न हो और वह भोजन किस तरह मिला है, धर्मसे या अन्यायसे इसका विचार न करोगे, तो आपकी सन्तान भी वैसी ही होगी। शास्त्रोंमें भोजन केवल दो वार

मध्यान्ह तथा सायंकालमें विहित है,बीचमें भोजन करना निषिद्ध है। **"नान्तरा भोजनं कुर्यात्"** बीचमें भोजन न करे, भोजन के पूर्व हाथ पांव धोकर आचमन करना चाहिये। गीले पांव भोजन करना शास्त्रविधि है। किंतु गीले पांव शयन नहीं करना, जो भोजन शास्त्रनिषिध है, वह नहीं खाना चाहिये, जो पदार्थ बनाये जायँ बिना देवता, अतिथि, कुटुम्बियोंको दिये स्वयं नहीं खाने चाहियें।

वह आहार जो दोषोंको उत्तेजित करे और शरीरके बाहर न निकले सदा निषिद्ध है। जो आहार मनको प्रिय हो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शमें कोमल हो, उसके भोजन करनेसे शरीरके धातु, बल, वीर्य, पराक्रमकी वृद्धि होती है, भोजन प्रमाणसे करना चाहिये जो पदार्थ खानेमें भारी हों उन्हें थोड़े खावे, जो खानेमें हलके हैं, उन्हें तृप्ति पर्यन्त खाना। विरुद्ध भोजनसे सदा बचना चाहिये, जैसे मधु, तिल, गुड़, उड़द, मूली, दूध, दही एक साथ नहीं खाना इसी प्रकार बहुत निमक, खटाई, कड़वा, चपरा, कसैला, बहुत गरम, बहुत ठण्ढा, बहुत देरका रक्खा जिसमें दुर्गन्ध आता हो, ऐसा भोजन मत करो, प्रसन्न और पवित्र मनसे पवित्र जगह पर भोजन करना वैद्यकशास्त्र का मत है। मध्याह्नका भोजन किया सायंकालतक न पचे तो कदाचित् भोजनकर सकते हो यदि सायंकालका किया भोजन न पचे तो तबतक कदापि भोजन नहीं करना। सामान्य नियम यह है कि दो भाग उदरके भोजनसे, एक भाग जल, एक वायुके संचारके लिए, इन नियमोंपर चलनेसे बहुत रोगोंसे बचे रहोगे।

जो चावल बिना धुले पकाये जावें उन्हें भोजन नहीं करना, जो शाक कीड़ोंसे खाया हुआ या सुखाया हो अथवा पुराना या बेमौसमी हो या बिना घी, तेलके पकाया हुआ हो, उसे भी न खाना। जो फल पुराने, कच्चे हवा धूपसे गिरे या किसी जीवके खाये हुए हों, उन्हें नहीं खाना चाहिए, तम्बाखू, चुरुट, सिगरेट सब उन्मादक वस्तुओंसे दूर रहना चाहिये। सुरापान महापातक है, इसको कदापि न करना। भोजनका समय नियत हो, सायंकालको गुरुपाक भोजन न करना।

भोजनके साथ जलका भी सम्बन्ध है, जल जहाँ तक हो शुद्ध जल पीना चाहिये जैसे—

"निर्गन्धम् व्यक्त रसे जीर्णं वारि बलप्रदम्।
भोजने चामृतं वारि भोजनान्ते विषप्रदम्॥"

जल स्वच्छ हो पतला हो जिसमें किसी भी प्रकारकी गन्ध न हो किसी प्रकारका स्वाद विशेष न हो पवित्र हो, जिससे पियास कम हो शीतल जल पीना चाहिये भोजन हो सके तो पत्तलपर करे या चान्दीके बर्तनमें या पत्थरके बर्तनमें करे।

शिक्षा

पुण्यतीर्थे कृतं येन तपः क्वाप्यतिदुष्करम् ।
तस्य पुत्रो भवेद्वश्यः समृद्धो धार्मिकः शुचिः ॥

जिसने पुण्यतीर्थमें तपस्या की हो, उसीका पुत्र धार्मिक, गुरुजन की पूजा करनेवाला होता है। शास्त्रमें उन मनुष्योंकी आयु, विद्या, ऐश्वर्य प्राप्ति लिखी है जो अपने गुरुजनके भक्त हों। मनुष्य अपने मृदुस्वभाव व प्रेमसञ्चारिणी शक्तिके द्वारा दूसरोंकी प्रकाशमय शक्तियोंका आश्रय लेकर अपनी शक्तियोंको बढ़ा लेता है। प्रकाशमय शक्ति सत्त्वगुणवती रहती है, इसलिए सत्त्वगुणसे उत्पन्न हुए मृदु-स्वभावशुद्ध प्रेम इनके प्रयोग करने से सत्वगुणकी शक्तियाँ दूसरोंसे आकर अपने आपमें सन्निवेश करती हैं, इसलिये प्राथमिक शिक्षा गुरुजनोंका पूजन है। गुरुजनोंके साथ हार्दिक विशुद्धभक्तिसे जिस तरह उनकी शक्तियां हममें आजाती हैं इसी तरह जगत्से प्रकाशमय शक्ति उसको मिल जाती है। यह स्मरण रहे जिस तरहसे सांक्रामिक रोगीके संसर्गसे संसर्गीको भी प्रायः उस रोगके हो जानेका भय रहता है, इसी तरह खासकर बाल्यावस्थामें जिस समय संस्कार-कोश शुद्ध रहता है, उस समय मलीन प्रकृति, दुष्टप्रकृति, स्वार्थी क्षुद्र इनके संसर्गसे बचना चाहिए, इनका संसर्ग तामसकी शक्तियों को बढ़ाकर सात्त्विक प्रकाशका आवरण कर देता है।

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः ॥

ठीक है, पुण्यका फल ऐश्वर्य इसको सब चाहते हैं किन्तु स्वार्थ का परित्याग कर निर्द्वन्द्व पुण्यपीठ पर आसन बांधना नहीं चाहते और पापका फल दुःख दारिद्र्य कोई नहीं चाहता, किन्तु दूसरोंको दुःख देना पाप करना नहीं छोड़ते। चाहते हैं पुत्र, दीर्घायु, सदैश्वर्यवान् हों, इसका विचार करना तुच्छ समझते हैं। ऐश्वर्य आयु प्रद विद्याकी शक्ति क्षीण क्यों होती है, माता पिताके दुरात्म्यभाव से, बालकके संस्कार मलिन होकर दम्भाभिमान उसके बढ़ते जाते हैं, जिससे वह विद्वान्, धार्मिक नहीं होता। शास्त्रमें यह दर्शाया हुआ है **'एवमेनः शमं याति बीजगर्भः समुद्भवम्'** शास्त्रानुसार संस्कार करनेसे बीजगर्भके दोष दूर हो जाते हैं, अब सांसर्गिक दोष रहे उनसे बचनेके लिए बाल्यकालसे गुरुजनका सत्कार करनेकी शिक्षा दी जाय, जिससे उसके रोम-रोममें मृदुस्वभाव, सत्याचरण, अद्रोह, सर्वजनप्रियता बनी रहे।

शिक्षाका विकाश अर्थात् शास्त्रमें जो आदेश हमें मिलते हैं, जिन उपदेशोंसे धृति, क्षमा, अक्रोध, इन्द्रियोंका दमन आदि मनुष्यताके चिन्हविकाश होते हैं, यह सब बातें सत्संग पर निर्भर हैं जैसी संगति करोगे वैसे गुण उपजेंगे, शास्त्रमें सत्संग सबसे बड़ा साधन मनुष्यजीवनका बताया है, जब तक दुष्ट संग त्याग सत्संगका ग्रहण न हो तब तक वह मनुष्य-मनुष्य कहलाने योग्य नहीं है।

"वेश भवो गुणवानपि संग विशेषेण पूज्यते पुरुषः
नहि तुम्बीफल विफलो वीणा दण्ड प्रयाति महिमानम्"

चाहे उच्च गुणवान् वंशमें भी जन्म हुआ है, परन्तु विशेष पुरुषोंके संग करनेसे ही वह पूज्य होता है। तुम्बीका फल इतना मूल्यवान नहीं कि बड़े महात्माओंकी गोदीमें बैठने योग्य हो। परन्तु बीणाके साथ रहनेसे तुम्बी भी प्रतिष्ठा पाती है, आज भारतके वीर कुमार सिकुड़े चेहरेके दुखःमय जीवन वालेको है उन्हें सत्सङ्ग और असत् संगका ज्ञान नहीं, जिनकी संगति जीव मारने और शराब पीने, ताशखेलने, बायसकोप देखनेमें फैशिनकी एक मात्र आराधना करना किताबोंको रट कर भी दम्भ अभिमानसे खाली नहीं। ऐसे संगसे क्या लाभ और सन्तोषमय जीवनकी लालसा हो सकती है? इनका कहना कुछ करना कुछ वाणीपर भरोसा नहीं वचन देकर वचन भङ्ग करना यह जीवन साधु जीवन विद्वन् जीवन देशभक्त जीवन नहीं हो सकता सत्संगी पुरुषोंका साधु आचरण निरभिमान वृत्ति अपने इकरारका पूर्ण करना परमधर्म होता है, जैसे—

उदयति यदि भानु पश्चिमे दिग्विभागे, प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्नि, विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायां न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम्" ॥

सम्भव है कि सूर्य भी पश्चिममें कभी उदय हो और सुमेरु पर्वतका चलना भी कभी सम्भव हो, अग्निका बरफ बन जाना भी कभी सम्भव हो, पत्थरोंके चट्टानमें कमल विकाश हो जाना शायद कभी सम्भव हो, परन्तु सज्जन पुरुषोंकी वाणी कभी दूसरी नहीं बदलेगी, जो कहा वह अवश्य करेंगे, यह सज्जनका लक्षण कहा है।

गुरु पूजा

जनिता चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते गुरवः स्मृताः ॥१॥
मातृपितृगुरूणांच पूजा बहुमता मम ।
इह लोके नरो भोगान् यशश्च महदश्नुते ॥२॥

उत्पन्न करनेवाला, व्रतबन्ध देनेवाला, विद्या पढ़ानेवाला, भोजन वृत्ति देनेवाला, भयसे बचानेवाला अर्थात् माता, पिता, गुरु, आचार्य राजा सहायक ये सब गुरु हैं। शास्त्रमें मनुष्यको सबसे प्रथम गुरुजन का पूजन अर्थात् उनकी प्रतिष्ठा मन, वच, कर्मसे उनका हिताचरण समझना। गुरु जो मनुष्यको ज्ञान देता है, रक्षा करता हैं, माता, पिता, आचार्य पूजन इनका हित करना परम धर्म है, भीष्मजी का उपदेश है ॥१॥

माता, पिता, गुरुकी प्रतिष्ठा सत्कार मुझे बहुत ही माननीय है, जो मनुष्य इनकी सेवा करता है वह इस देहमें उत्तम भोग करते हुए पुण्य, यश प्राप्त करता है और परलोक में उत्तम गति पाता है ॥२॥

गुरूणां चैव निर्बन्ध न कर्तव्य कदाचन अनुमान्यः प्रसाद्यश्च गुरुःक्रुद्धो युधिष्ठिरः" ।

गुरुके साथ कभी हठ नहीं करना चाहिये, यदि क्रोध भी करे तो स्वयं नम्र होकर उन्हें प्रसन्न करना चाहिये ।

———

मातृ-पितृ भक्ति

न च तैरननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ।
यच्च तेभ्योनुजानीयुः स धर्म इति निश्चयः ॥१॥
त एव हि त्रयो लोका एत एवाश्रमास्त्रयः ।
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोग्नयः ॥२॥
पिता वै गार्हपत्योग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः ।
गुरुराहवनीयोग्निः साग्नित्रेता गरीयसी ॥३॥
त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रींल्लोकांश्च विजेष्यसि ।
पितृवृत्त्या त्विमं लोकं मातृवृत्त्या तथा परम् ॥४॥

विना उनकी आज्ञाके अन्य धर्मका अवलम्बन न करे जो वे कहें वही धर्म है ॥ १ ॥

वही तीन लोक, तीन आश्रम, तीन वेद, तीन अग्नियाँ हैं । ॥२॥

पिता गार्हपत्य, माता दक्षिणा, गुरु, आहवनीय अग्नि है अतः ये तीनों अग्नियाँ अति गुरुतर हैं ॥ ३ ॥

इन तीनोंमें प्रमाद न रखनेसे तीन लोकको जय कर लेगा, पिताकी सेवासे इस लोक और माताकी सेवासे परलोकको विजय कर लेगा ॥ ४ ॥

ब्रह्मलोकं गुरोर्वृत्त्या नियमेन तरिष्यसि ।
सम्यगेतेषु वर्तस्व त्रिषु लोकेषु भारत ॥५॥
यशः प्राप्स्यसि भद्रं ते धर्मञ्च सुमहत्फलम् ।
नैतान्नतिशये जातु नात्यश्नीयान्न दूषयेत् ॥६॥
नित्यं परिचरेच्चैव तद्वै सुकृतमुत्तमम् ।
कीर्तिं पुण्यं यशो लोकान्प्राप्स्यसे राजसत्तम ॥७॥
सर्वे तस्याहता लोका यस्यैते त्रय आहताः ।
अनाहतास्तु तस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥८॥

गुरुकी शुश्रूषा करनेसे ब्रह्मलोकी प्राप्ति होती है, हे भारत! इन तीन पूज्य स्थानोंमें सावधानीसे वर्ताव करना चाहिये ॥ ५ ॥

हे भद्र! इस प्रकार करनेसे बड़ा यश और महान् फलको देनेवाला धर्म पावेगा, कोई भी मनुष्य इनकी उपेक्षा न कर हमेशा परिचर्यामें लगा रहे और कभी दूषित न करे ॥ ६ ॥

इसीकी नित्य सेवा करना ही परमपुण्य है। हे राजसत्तम! गुरुजनकी पूजा करनेसे कीर्ति, पुण्य, यश, उत्तम उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥

जिसने इन तीनोंका सत्कार किया है, उसने तीन लोकका पूजन कर लिया, जिसने इनका आदर न किया, उसकी सम्पूर्ण क्रिया निष्फल हैं ॥ ८ ॥

न चायं न परो लोकः तस्य चायं परन्तप ।
अमानिता नित्यमेव यस्यैते गुरवस्त्रयः ॥९॥
न चास्मिन्न परे लोके यशस्तस्य प्रकाशते ।
न चान्यदपि कल्याणं परत्र समुदाहृतम् ॥१०॥
तेभ्य एव हि तत्सर्वं कृत्वा च विसृजाम्यहम् ।
तदासीन्मे शतगुणं सहस्रगुणमेव च ॥११॥
स स्मान्मे सम्प्रकाश्यन्ते त्रयो लोका युधिष्ठिर ।
दशैव तु सदाचार्यः श्रोत्रियादतिरिच्यते ॥१२॥
दशाचार्यादुपाध्याय उपाध्यायात्पिता दश ।
पितुर्दश तु मातैका सर्वाम्बा पृथिवीपतिः ॥१३॥

हे परन्तप ! जिसने इनका निरादर किया उसके दोनों लोक नष्ट हो जाते हैं ॥ ९ ॥

उसका किसी लोकमें यश नहीं और कोई कल्याण नहीं होता है ॥ १० ॥

जो कुछ मैंने किया सब उनके लिये छोड़ता हूं तब वह भलाई शतसहस्रगुण मुझको मिलती है ॥ ११ ॥

गुरुत्वेनाभि भवति नास्ति मातृसमो गुरुः ॥१४॥
यं माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥१५॥
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥१६॥
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते ।
न तैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्य समाचरेत् ॥१७॥

श्रोत्रियसे दशश्रेणी ऊँचा है, आचार्यसे उपाध्याय दशगुणा श्रेष्ठ है, उपाध्यायसे दशगुणा पिता, पितासे दशगुणा माता, या जो कुछ पृथिवीमें पूज्य है, वह माता है। माताके समान और गुरु कोई नहीं है ॥ १२। १३। १४ ॥

माता, पिता पुत्रके लिये जो कुछ कष्ट उठाते हैं, उसका बदला सैकड़ों वर्षमें भी नहीं हो सकता ॥ १५ ॥

माता, पिताका नित्य हित करना, इसी तरह आचार्यका भी हित करे। माता, पिता, आचार्यके सन्तुष्ट होनेसे सम्पूर्ण तपस्या सफल हो जाती हैं ॥ १६ ॥

उन तीनोंकी सेवा परम तप है, बिना उनकी आज्ञाके और-और अनुष्ठान करना उचित नहीं है ॥ १७ ॥

गुरुभक्ति

यश्चावृणोत्यवितथेन कर्णावदुःख कुर्वन्नमृतं सम्प्रयच्छन् तं मन्येत पितरं मातरञ्च तस्मै न द्रुह्येत्कतमच्च नाह ॥१॥

विद्यां श्रुत्वा गुरुं येनाद्रियन्ते प्रत्यासन्ना मनसा कर्मणा वा। तेषां पापं भ्रूणहत्याविशिष्टं नान्यस्तेभ्यः पापकृदस्ति लोके ॥२॥

तस्मात्पूजयितव्याश्च संविभोज्याश्च यत्नतः।
गुरवोर्चयितव्याश्च पुराणं धर्ममिच्छता ॥३॥

जो गुरु सत्यका उपदेश करता हुआ विद्यारूपी अमृत पिलाता है, उसको माता, पिता, जान कर कभी उसका अनादर न करे ॥ १ ॥

गुरुसे थोड़ी भी विद्या पढ़कर जो उसका आदर नहीं करता, उसको भ्रूणहत्यासे भी अधिक पाप लगता है। उससे अधिक कोई पापी नहीं जो विद्यागुरुका आदर न करे ॥ २ ॥

धर्मके चाहनेवालेको नित्य गुरुका सत्कार, मान, पूजा करनी चाहिए ॥ ३ ॥

येन प्रीणात्युपाध्यं तेन स्याद्ब्रह्मपूजितम् ।
मातृतः पितृतश्चैव तस्मात्पूज्यतमो गुरुः ॥४॥
केनचिन्न च वृत्तेन ह्यवज्ञेयो गुरुर्भवेत् ।
न च माता न च पिता यादृशो मन्यते गुरुः ॥५॥
उपाध्यायं पितरं मातरञ्च येऽभिद्रुह्यन्ते मनसा कर्मणा वा। तेषां पापं भ्रूणहत्याविशिष्टं तस्मान्नान्यः पाककृदस्ति लोके ॥ ६ ॥
मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य स्त्रीघ्नस्य गुरुघातिनः ।
चतुर्णां वयमेतेषां निष्कृतिं नानुशुश्रुमः ॥७॥

जिसने माता, पितासे पूजाके योग्य गुरुका पूजन किया है, उसने ब्रह्मका पूजन किया ॥ ४ ॥

गुरु किसी तरह भी अवज्ञाके योग्य नहीं हो सकता है, माता, पितासे अधिक पूजाके योग्य गुरु ही होता है ॥ ५ ॥

विद्या पढ़ानेवाला गुरु, माता, पिता, इनका मन, बच, कर्मसे जिसने अनादर किया उसको भ्रूणहत्यासे अधिक पाप लगता है, उससे ज्यादा पापी संसारमें दूसरा नहीं है ॥ ६ ॥

मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्रीघाती, गुरुघाती इन चार प्रकारके पाप करनेवालोंकी शास्त्रमें शुद्धि नहीं है ॥ ७ ॥

विद्याप्राप्तिके लिये मुख्य तीन बातें हैं, श्रद्धा, भक्ति, निरभिमान। जब तक इनका अभाव रहा सारस्वतसार प्राप्त नहीं होता, केवल स्वयं पुस्तक पढ़नेसे भी ज्ञान नहीं होता, जब तक विधिपूर्वक गुरुसे शास्त्र न पढ़ा जाय।

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥ ८ ॥

वेद, वेदान्त पढ़े हुए, गुरुके घरपर जाकर पढ़ें तब उसके प्रसादसे विद्या फलवती होती है ॥ ८ ॥

एकाक्षर प्रदातारं गुरुं यो नाभिवन्धते।
पशुयोनी शर्म प्राप्य चाण्डालमधिगच्छति॥

गुरुका भी यह परमधर्म है, कि शरण आये हुए, शिष्यकी रक्षा करे, तब ही तो अर्जुनने कहा था, कि—

शिष्यस्तेहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्

हे महाराज मैं तुम्हारा शिष्य हूं, गुरु शिष्यपर स्वाभाविक दया करते हैं, आप दयाकर मुझे कल्याण मार्ग बतलावें।

शास्त्रोंमें राजाका वर्णन आया है, जैसे याज्ञवल्क्य स्मृतिमें,

महोत्साह स्थूर रक्ष कृतज्ञो वृद्धसेवक।
विनीत स्त्वथ संम्पन्नो त्रय्यां चैव नराधिप॥

महोत्साहादि गुण सम्पन्न जो राजा होते थे, प्रजाको अपने पुत्र समान समझकर उनके हितकी निरन्तर चेष्टामें लगे हुए रहते थे।

न्याय शील आदि गुण सम्पन्न होकर अनुशासन करते थे, जैसे भीष्मजीने राजधर्म बताये थे, उस समय प्रजा भी राजाकी पूर्ण भक्त होती थी, भारतवर्षकी शासन प्रणालिमें उसके राजमें निवास करनेवालोंको प्रजा शब्दसे निर्देश किया है, प्रजा का अर्थ है, सन्तान ठीक पिता और पुत्रका जो सम्बन्ध होता है। वही धार्मिक राजा और उसकी प्रजाका होता था। तब राजभक्ति भारतवर्षमें धर्मका अंग माना गया था, इसीलिए गीतामें 'नराणां च नराधिपम्' कह कर लिखा गया है।

राजभक्ति और देशभक्ति

नराणां च नराधिपम् ॥ १ ॥

मनुष्य जातिमें राजा ईश्वरके तुल्य माना गया है, उसकी आज्ञा पालन तथा भक्ति मनुष्यके सबप्रकार हितकी साधक हैं।अनादिसिद्धि वेदोंमें प्रजावर्गको राजाका शुभ चिन्तन सबसे प्रथम कर्तव्य है। राजाके शुभचिन्तनसे राज्यका शुभचिन्तन होता है, राजके अशुभ-चिन्तनसे राज्यका अमंगल होता है। प्राचीनकालमें प्रजाका सबसे प्रथम कर्म राजाका ही शुभचिन्तन मनाना था जैसे वेदोंमें लिखा है ॥ १ ॥

ॐ इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठाय महते ज्यानराज्यायेन्द्र-स्येन्द्रियाय। इम ममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमष्यै विश एष वोमी राजासोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥ २ ॥

परमेश्वर! हमारे राजाके कोई शत्रु न हों और ईश्वर उसको सद्बुद्धि प्रदान करे, इस प्रकार वेदोंमें राजाके शुभचिन्तनके लिये अनेक पाठ्य मंत्र हैं ॥ २ ॥

महर्षि याज्ञवल्क्य लिखते हैं,

निजधर्माविरोधेन यस्तु सामयिको भवेत्।
सोपि यत्नेन संरक्ष्यो धर्मो राजकृतश्च यः॥३॥

निज अर्थात् आत्म धर्मसे विरुद्ध न हो, ऐसा जो सामयिक धर्म है, उसका पालन करना और राजाके बनाये हुए नियमपर अवश्य आचरण करना चाहिए॥ ३॥

राजा और प्रजाका सम्बन्ध पूर्वकालसे इस प्रकार है, जैसे पिता और पुत्रका या शिर और धड़का, इनके परस्पर मेलसे ही शरीर-यात्रा सफल होती है, जिस प्रकार संपूर्ण शरीर मस्तिष्क (शिर) के अनुशासन पर सुखी रहता है। इसी तरह प्रजा भी राजाके वशवर्तिनी होकर परम श्रेयको प्राप्त करती है। राज्य शासन प्रणाली मनुष्य मात्रकी रक्षाके लिए एक ही महान् आधार है, जिस वस्तु या व्यक्तिका जिस प्रकार हमारे पोषण या रक्षा करनेका सम्बन्ध है,उसी तरह उसके विपरीत आचरण करनेपर दुःखका भी भय है। जीव मात्र अपने प्राण रक्षाके लिये अनेक क्लेश सहनकर प्राणोंको बचाते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण शरीरका आश्रय प्राण है,प्राणोंकी रक्षा भी राजाके अनुशासनपर निर्भर है, राज-दण्डमें ही वह ईश्वरीय शक्ति है कि नृशंस दुराचारी, डाकू, लुटेरे, शत्रुका भय नहीं रहता, दीन लोग भी अपनी पर्णशालाओंमें निर्भय रहते हैं, इतना ही नहीं बल्कि राजाके धर्मसे दैवउत्पात तक नहीं होते हैं। राजाके धर्म पर अकाल मृत्यु तक नहीं होती। इस प्रकार हमारे प्राण, धन, कुटुम्बके धर्मकी रक्षा

करने वाला एकमात्र राजा है, उसके हितपर आचरण करना ही हमारा हित है, राजाका अहित सोचना ही अपना अनिष्ट है। मनु :—

एकमेवदहत्यग्निर्नरं दुरुपसर्पिणम्।
कुलं दहति राजाग्निः सपशुद्रव्यसञ्चयम् ॥४॥
यस्य प्रसादे पद्मास्ते विजयश्च पराक्रमे।
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजमयो हि सः ॥५॥
अराजकेहि लोकेऽस्मिन् सर्वतो विद्रुतो भयात्।
रक्षार्थमस्य लोकस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥६॥
चन्द्रानिलोष्णरश्मीनामग्नेश्च वरुणस्य च।
इन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः॥७॥

अग्नि जिस पदार्थको सम्पर्क करती है, उसीको जलाती है, राजा के साथ द्रोह करनेसे उत्पन्न अग्नि सारे कुल और धनको भस्मकर देती है॥ ४॥

राजा तेजोमय शरीर होनेसे परमश्रद्धाके योग्य है। जिसके प्रसन्न होनेसे लक्ष्मी, पराक्रममें विजय, क्रोधमें मृत्यु होती है॥ ५॥

बिना राजाके संसारमें सब भयभीत होने लगें, इस लिए संसार की रक्षाके हेतु परमेश्वरने राजा उत्पन्न किया॥ ६॥

सूर्य चन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण कुबेर, यम, इन्द्र इनकी मात्रासे परमेश्वरने राजाको बनाया है॥ ७॥

यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः ।
तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ॥८॥
बालोपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥९॥

क्योंकि आठ लोकपालोंकी मात्रासे राजाका शरीर बनता है, इससे सम्पूर्ण प्राणियोंपर उसका तेज पड़ता है ॥ ८ ॥

राजा बालक भी हो तो भी उसका अनादर नहीं करना यह महान् देवता मनुष्य रूपसे टिका हुआ है ॥ ९ ॥

आर्यसिद्धांतके अनुसार राजा दिव्य शरीरधारी होनेसे सत्य-संकल्प होता है, जिसके ऊपर राजा चित्तमें भला या बुरा चिन्तन करता है, उसको वैसा ही फल ईश्वरीयशक्तिसे मिलता है। इसलिए अनेक प्रकारसे रक्षा करनेवाले राजाकी जो अवज्ञा करता है या अनिष्ट सोचता है, राजा यदि उसका कुछ भला बुरा फल न दे तथापि ईश्वरीय शुभ या अशुभ घटनासे वह भले बुरेका फल तत्काल पाता है। एक राजा बड़ा न्यायशील था, सब प्रकार प्रजाके हितमें तत्पर रहता था, रात्रि दिवस न्यायको फैलानेमें एकमात्र उसकी चेष्टा थी। राजा रात्रिको गुप्त चर वेशसे अपनी प्रजाका हाल स्वयं देखता था कि चोर, तस्कर, दुर्वृत्त, महासाहसिक लोग तथा मेरे कर्मचारी जिनपर मैं विश्वास रखता हूं ये लोग अपने निजके रागद्वेषसे मेरे परमार्थको तो नहीं बिगाड़ते हैं, इत्यादि रीतिसे वह

निरंतर सत्य धर्मका पालन करनेवाला था। एक समय राजा वन्य पशुओंके तथा वनस्पतिकी रक्षार्थ वनमें भ्रमण करने गया, जब घर को लौटा अभी श्रांति दूर नहीं हुई थी कि इतनेमें चोपदारने सूचना दी कि प्रभो! उर्वरापुरीको प्रतिवेशी शत्रुओंने लूट लिया। यह सुनते ही वह नरनाथ एकदम वहाँ पहुंचा। उनकी रक्षाका विचारकर रहा था कि, इतनेमें लुटेरोंके दलने राजाको घेर लिया। राजाको आपत्तिमें देख एक दूत बोला, नरनाथ! आपके जीवनपर हमारे सबके जीवन हैं, यह कराल समय है आप मेरे कांधेपर चढ़ जाइये, मैं आपको लेकर पीछे भाग जाऊँगा, दूतकी इस बातको सुन राजा बोला:—

तन्मे प्राणव्ययेनापि जीवयेतान्ममाश्रितान्।

दूत, चाहे मेरे प्राण चले जायँ, परन्तु ये मेरे आश्रित जो हैं, उनकी रक्षा होनी चाहिए। इस अन्तरालमें राजाका सैन्यदल भी वहाँ पहुंच गया और उन दुष्ट डाकुओंको हटाकर उर्वरापुरीको निर्भय किया। डाकू कथावशेष हुए। राजा अपनी राजधानीको पहुंचा। उर्वरापुरीके कुछ दुष्टजन राजाके इस उपकार पर असन्तुष्ट हुए, जिनकी इच्छा थी कि राज्यमें उपद्रव स्वछन्दतासे निवास करें। कालान्तरमें जब न्यायप्रिय राजाका शरीर वृद्ध हो गया तब उर्वरापुरी के एक नीच वृत्तिके पुरुषने राजाके विरुद्ध षड्यंत्र रचा। निदान कर्णपरम्परासे यह बात राजा तक पहुंची, राजा अपनी रोगग्रस्तता तथा वृद्धावस्थाके कारण अपने बालक युवराजको असमर्थ देख कुछ प्रतीकार न कर सका, अपने मनमें ही चिन्तना किया कि हे ईश्वर!

जिन पर मैं विश्वास रखता था वही कृतघ्न होकर इस काण्डके रचयिता बने हैं। खैर राजाके संकल्पमात्रसे ही क्या हुआ कि अकाण्ड वज्रपात होकर व दुष्टचिन्तक राजद्रोही शीर्ण विशीर्ण शरीर होकर रसातल चुम्बन करने लगे। इसलिए अनेक प्रकारके उपकार करनेवाले राजाका जो अनिष्ट सोचता है, राजाके कुछ न करने पर भी ईश्वरीय दण्ड उसको तत्काल मिलता है।

सनातन आर्यावर्त धर्मके अनुसार राजाका पूजन, उसकी आज्ञा का पालन करना परम धर्म है। क्योंकि राजा ईश्वरकी मूर्ति मानी गई है। इसलिये प्रजाका धर्म राजाकी आज्ञा मानना और जो राजाके प्रतिनिधि हैं, उनके अनुशासन पर आचरण करना है। राजाका धर्म पुत्रवत् प्रजाका पालन व रक्षण तथा अनेक घोर विपत्तियोंसे बचानेके लिये विशेष प्रबन्ध करना अनादि कालसे चला आता है।

वीरवरोपाख्यानम्।

शूद्रक राजाके राज्यकालमें एक पुरुष वीरवर नामका वहां आया। उसने द्वारपालसे कहा कि राजाके दर्शन करनेकी मेरी इच्छा है, राजाका दर्शन करा दीजिए। तब ड्योढ़ीवान्ने राजाकी आज्ञासे राजाके समीप उसको पहुंचाया। राजाकी नियमपूर्वक उसने वन्दना की। महाराजकी आज्ञासे एक स्थान पर बैठ गया, राजाने पूछा—'तुम्हारा यहां आनेका क्या प्रयोजन था।' उसने उत्तर

दिया—'महाराज ! राजाकी सेवा करनेकी मेरी इच्छा है, मुझे कुछ सेवा प्रदान कीजिए।' मंत्रियोंने कहा कि क्या वेतन तुम लोगे ? उसने उत्तर दिया कि पांचशत स्वर्णमुद्रा नित्य मेरा खर्च है। तब उन्होंने कहा कि तुम्हारे पास सेवा करनेका क्या ऐसा साधन है ? वीरवर बोला—'दो हाथ और तीसरा खड्ग है।' मंत्री लोग इतने वेतन पर उसको रखना उचित नहीं समझते थे, किन्तु राजाने आज्ञा दी कि कुछ दिन इसको रख लेना चाहिये। निदान उक्त वेतन पर वीरवर वहां नियत हुआ। वीरवरको राजकोषसे जो मिलता था, उसका अधिकांश वह देवकृत्य तथा ब्राह्मणोंको दान देता था कि जिससे राजाका मंगल हो और तीसरा हिस्सा दीन, दुःखियोंको प्रदान कर अवशिष्ट एक चतुर्थांशसे अपनी जीवनयात्रा करता था। इस तरह रात दिन खड्ग हाथमें लेकर राजाकी ड्योढ़ी पर घूमता रहता था, मनमें अपने स्वामीका शुभचिन्तन करता रहता था, जब राजाकी आज्ञा होती थी तब अपने स्थानको जाता था। निदान कृष्णचतुर्दशीकी अर्द्धरात्रिको कहींसे किसी स्त्रीकी बड़ी दुःखमयी रुदनकी आवाज राजाके कानमें पहुंची, राजा जाग उठा और वीरवरको देख बोला यह रोनेकी आवाज कहांसे आ रही है, इसका पता लगाओ। वीरवर बोला जो आज्ञा, इतना कह उस शब्दके अनुसार चला। इधर राजाने अपने मनमें विचारा कि इस अर्द्ध-रात्रिमें अकेला उस सेवकको अनिर्दिष्ट स्थानपर जानेकी मैंने उचित आज्ञा नहीं दी, इस प्रकार मनमें विचार कर राजा भी उसके पीछे-पीछे गुप्तवेशमें चल दिये। वीरवर नगरके बाहर जाकर क्या

देखता है कि दिव्यालंकारभूषिता, रूप यौवनवती एक स्त्री फूट-फूट कर रो रही है। उसने स्त्रीसे पूछा कि तुम कौन हो और किस लिए अर्द्धरात्रिमें रुदन करती हो ? स्त्री बोली मैं इस शूद्रक राजाकी राज्यलक्ष्मी हूं, चिरकालसे इसके भुजबलमें रही हूं, अब यहांसे विदा होती हूं, राजाके पूर्वप्रेमके वियोगका मुझे दुःख हो रहा है। वीरवर ने कहा जहां अपाय होता है; वहां उपायका होना भी सम्भव है, तो किस उपायसे आप फिर यहां विराज सकती हैं ? वीरवरके वाक्य सुन वह राजलक्ष्मी बोली, यदि तुम अपने पुत्र शक्तिधरको जिसमें बत्तीस महापुरुषके लक्षण विद्यमान हैं, सर्वमंगलाके समीप बलिदान कर सको तब मैं पूर्ववत् यहां स्थिर रह सकती हूं। इतना कह लक्ष्मी अन्तर्धान हो गई, वीरवर अपने घर गया और सोये हुए स्त्री, पुत्रको जगाकर लक्ष्मीने जो कहा था, उनको सुनाया। शक्तिधर वीरवरके पुत्रने कहा, यदि ऐसा है तो मैं धन्य हूं। जिनके प्राण स्वामी के रक्षार्थ काममें आते हैं, धन्य है आजके समयको जो इस नश्वर शरीरसे ऐसा उत्तम फल मिलता है, तो अब विलम्ब नहीं करना चाहिए। क्योंकि :—

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
तन्निमित्तो वरं त्यागो विनाशे नियते सति॥१०॥

बुद्धिमानको धन जीवन दूसरोंके उपकारके लिये देना चाहिए, जब धन और जीवन यह नाशवान् वस्तु हैं तो इनको अच्छे प्रयोग पर त्यागना ही श्रेष्ठ है॥ १०॥

शक्तिधरकी माता बोली, स्वामिन् ! यदि आज इस बर्त्तावको अपने स्वामीके लिए तुम न करोगे, तो किस कर्मसे इतने वेतन लेनेका प्रत्युपकार दिखाओगे, अवश्य राजाके हितके लिए पुत्रबलि दीजिए। इस प्रकार आपसमें सम्मति कर वे सब सर्वमंगलाके मन्दिरमें गये, उचित विधिसे देवीका पूजन कर, वीरवर पुष्प हाथमें लेकर प्रार्थना करने लगा। हे देवि ! प्रसन्न हो जाइये, महाराज शूद्रककी विजय हो, यह बलिदान लीजिए इतना कह कर पुत्रका शिर काटकर भगवतीको समर्पण किया। तब वीरवर विचारने लगा कि महाराजकी सेवा जो मुझे कर्तव्य थी वह मैंने कर दी, अब बिना पुत्रके मेरा जीना व्यर्थ हैं, इतना कहकर अपना शिर काट दिया। स्त्रीने भी पति, पुत्रको मृत्युशय्यामें देखकर उसी मृत्युशय्यामें शयन करनेकी इच्छासे अपना बलिदान किया। राजा इस सम्पूर्ण चरित्रको देख रहा है, इस प्रकार सच्चे सेवकका वियोग देख शोकार्त होकर बोला—

जीवन्ति च म्रियन्ते च मद्विधाः क्षुद्रजन्तवः।
अनेन सदृशो लोके न भूतो न भविष्यति॥११॥

मुझ सरीखे क्षुद्रजीव कितने ही उत्पन्न होते हैं, कितने ही मरते जाते हैं। किन्तु इसके तुल्य संसारमें न कोई हुआ है और न होगा॥ ११॥

इस प्रकार सच्चे भक्तके बिना मुझे राज्य भी व्यर्थ है, यह कहकर अपने शिरको जैसे खड्गसे पृथक् करनेको उद्यत हुआ, वैसे ही

भगवती सर्वमंगला साक्षात् हो राजाका हाथ पकड़ कर कहने लगी हे पुत्र ! तेरे भृत्यवात्सल्यसे मैं प्रसन्न हूं, इस तरह साहस मत कर, अब आनन्दके साथ राज्यलक्ष्मीको भोगिए। राजा अंजली बांध बोला हे देवि ! मुझे जीवन और राज्यसे प्रयोजन नहीं, यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरी आयुशेषसे सपरिवार वीरवर जीवित हो जाय, अन्यथा मैं अपने प्राणोंको अर्पण करता हूं। भगवतीने वरदान दिया राजन् ! तुम्हारी सत्यता पर मैं प्रसन्न हूं, तुम्हारी विजय होगी और वीरवर सपरिवार जीवित हो जायगा, इतना कह देवी अन्तर्धान हो गई। वीरवर सकुटुम्ब जीवित होकर घरको गया, राजा उससे छिपकर अन्तःपुरमें चला गया। प्रातःकाल वीरवरसे रात्रिका वर्णन पूछा, उसने उत्तर दिया महाराज ! वह रोती हुई मुझे देखकर अन्तर्धान हो गई और कोई वार्ता नहीं। यह सुन राजाको आश्चर्य हुआ कि किन शब्दोंमें इसकी प्रशंसा की जाय, यह कोई महापुरुष है।

प्रियं ब्रूयादकृपणः शूरः स्यादविकत्थनः।
दातानापात्रवर्षीच प्रगल्भःस्यादनिष्ठुरः ॥१२॥

एतान् गुणांस्तात महानुभावानेको गुणः सश्रयते प्रसह्य। राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान् गुणानेष गुणो विभर्ति ॥ १३ ॥

दानी होकर प्रिय वाणी बोलनेवाला हो, शूर होकर घमण्डी न हो, दाता होने पर अपात्रदानी न हो, प्रगल्भ होने पर कठोर भाषी न हो, यह महापुरुषके लक्षण इसमें घटते हैं ॥ १२ ॥

राजाने प्रातःकाल मान्यपुरुषोंकी सभामें उसका सब वर्णन कहकर कर्नाटकका राज्य उसे दे दिया। राजाकी सत्यभक्तिसे ही सब प्राप्य है। राजाके आश्रय और प्रसन्नता पर ही सम्पूर्ण गुणोंका प्रकाश होता है, चाहे कितना ही धनी या विद्वान् हो, जब तक राजभक्तिरूपी अमृत पान न करे, तब तक वह मान्य श्रेणीमें नहीं आ सकता है।

हे मित्र ! जिन गुणोंका हमने वर्णन किया है, उन सब गुणोंमें बलवान् गुण यह है कि जब राजा जिसका सत्कार याने मान करता है, तब सब गुण उसमें प्रकाशित हो जाते हैं, अर्थात् राजाके सन्मान पर ही गुणोंका प्रकाश होना निर्भर है। प्रजावर्गका परमधर्म है कि राजाके श्रेयके लिए अपने प्राण तक अर्पण करनेमें संकोच न करे ॥ १३ ॥

स्वाम्यर्थे यस्त्यजेत्प्राणांस्तस्य लोकाः सनातनाः ॥ १४ ॥

स्वामीके लिये जो प्राण तक दे देवे उसको ब्रह्मलोक होता है और सच्चा भक्त को राजा भी वैसा ही सम्मान देता है ॥ १४ ॥

जब कि राजा लोग धर्मशास्त्रानुसार प्रजाका पालन पुत्रवत् करते थे और प्रजाके दुःख-सुखमें शामिल रहते थे, तब प्रजा भी उनको ईश्वर तुल्य जानती थी, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं।

देशभक्ति सब भक्तियोंमें श्रेष्ठ है, जो देश भक्तिको जानता है, वही गुरुभक्ति, देवभक्तिका अधिकारी बन सकता है। जिस देशमें हमारा जन्म हुआ, जहांके जल-वायु, अन्नसे हमारा शरीर बना, जिस देशने अनेकों प्रकारोंसे हमारी रक्षा की है, जो भूमी हमारी जगद्धात्री रूप है, उस देश, उस भूमिकी सेवा करना हमारा परम कर्तव्य है। हमारी जन्मभूमि भारतवर्ष (आर्यावर्त्त) है, इस भूमिका पूजन और इस देशकी सेवा करना हमारा परम कर्त्तव्य है। मातृभूमिका महात्म्य—

"जननी जन्मभूमिश्च जाह्नवीच जनार्दन"

जन्मभूमि कहीं भी हो उसकी पूजा सेवा करना कृतज्ञ संसार का पहला धर्म, फिर जिसमें हमारी भारतमाता जिसकी गोदमें प्रातः स्मरणीय व्यास, वशिष्ठ, हृदयकेनाथ राम, कृष्ण, हृल्लेखा माता पार्वती उत्पन्न हुईं, जहांपर परम पावनी भगवती भागीरथी गगन-चुम्बी स्वच्छ हिमालयसे उतरकर देशको पवित्र करती हुई सागर-गामिनी है और जहांपर बद्रिकाश्रम आदि ४ पुण्यधाम हैं और अध्यात्म ज्ञानका संसारमें जहाँ पहले पहल प्रकाश हुआ है, जिस भारतभूमिमें मानव जातिकी संस्कृतिका प्रभात हुआ है। जिस देशमें उत्पन्न होकर ऋषियोंने सारे संसारको शिक्षा देकर उनको कल्याणमार्ग पर लगाया है। जैसे मनुने कहा है:—

"एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः
स्वंस्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।"

इस देशमें उत्पन्न हुए आचार्योंने सारे संसारको उनके अधिकारके अनुसार शिक्षा दी है। जिस विशाल भारतने संसारमें सभ्यताका प्रकाश किया, जिस देशने मनुष्योंके दो विभाग बनाये एक दैवी सम्पत्ति वाले, दूसरे आसुरी सम्पत्तिवाले । जो देश यह शिक्षा देता था कि मनुष्य होकर विद्या पढ़कर भी यदि आसुरी सम्पत्तिके हुए तो उन पुरुषोंकी विद्या शक्ति संसारके नाशके लिए होती है—"क्षयाय जगतोहिता" जो आसुरी सम्पत्तिके हैं। इसलिये यथार्थ मनुष्य बननेका प्रयत्न करना चाहिये। मनुष्य होते हुए भी दैवी सम्पत्तिका प्रकाश यदि न हुआ तो जन्म विफल है। जो देश शिक्षा देता है कि मनुष्य होकर भी यदि परोपकार आदि न हों तो नरपशु है, जो भारतवर्ष यह ज्ञान देता है कि किसीका बुरा न करो, सबमें भगवान देखो, सबको अपना समझो। जिस बातसे तुम्हें कष्ट पहुँचता है, उस कामसे दूसरेको भी कष्ट होता है, अपनी आत्मा के समान सबको देखो।

ऐसे पवित्र और जीवमात्रका प्यारा भारत देश मनुष्यमात्रकी पूजाके योग्य है फिर जिनका जन्म इस देशमें हुआ, उन्हें इस देशकी सेवा करनी परमात्माकी सेवा करनेके समान है।

दुर्लभम् भारते जन्म मानुष्यं तत्र दुर्लभम् ।

भारतवर्षमें जन्म लेना बड़े पुण्यसे होता है, उसमें भी भारतीय मनुष्य होना तो यह महद् पुण्य है।

भारतभूमीमें जन्मने पर कहा :—

"गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु"

इस भारत भूमिमें आगे देवांगणा गीत गाती थीं कि भारतमें जिनका जन्म हुआ है वे धन्य हैं। जन्मसे तात्पर्य केवल पशु पशु-जन्म नहीं है, बल्कि भारतीय जीवन जिनका है। भारतीय जीवन सात्विक जीवन है। जो किसीसे द्रोह नहीं करता, इसलिये अपनी मातृभूमि भारत माताकी सेवा करना प्रत्येक भारतीय आर्यका परम धर्म है। स्वार्थवश अपनी इन्द्रियोंके भोग लम्पटतामें जिनको अपनी भारतमाताका ज्ञान नहीं, उनका जीवन शोचनीय है।

सजातो येन जातेन यातिवंशः समुन्नतिम्।
पारिवर्तिनि संसारे मृतः कोवा न जायते ॥

उसीका जीवन धन्य है जिसने अपने देशकी उन्नती किया है। आज देशके प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है यह है, परम विचार और क्रियात्मक तप जो हमारे सामने है।

भ्रातृ-प्रेम

शास्त्रोंमें ज्येष्ठ भ्राताको भी गुरुतुल्य माना है, जिस समय प्राचीन श्रद्धेय भारतका समुदाचार हमारे दृष्टिपथ में आता है, और वर्तमान प्रचलित व्यवहारको देखते हैं तो मनुष्योंके अकल्याण, अनैश्वर्यका यह प्रधान कारण प्रतीत होता है कि कुटुम्ब में भाई भाईसे किस प्रकार स्वार्थान्ध होकर व्यवहार करते हैं और पूर्वकालीन भ्राताओंमें किस प्रकार घनिष्ठ प्रेम व भक्ति थी। यद्यपि प्रातःस्मरणीय रामचन्द्रजीके वनवास और भरतजीकी राज्य-प्राप्तिके लिये भरतकी माता कैकेयीने मंथराके उत्तेजन करने पर दशरथजीको उनकी पूर्व प्रतिज्ञा पर वाध्य किया था, तथा जब यह दारुण समाचार सुनकर भरतजी अयोध्या आये और रामचन्द्रजीको वहां नही देखते हैं, उनके समीप जानेके प्रथम मान्या, कौशल्याजीके चरणोंमें प्रणाम करते हुए समवेदना प्रकट करते हैं। कौशल्याजी सपत्नीपुत्र भरतको जानकर मोहवश तिरस्कार करती है कि तुम्हारे ही प्रपंचसे आज मेरा पुत्र राम राजा होनेके बदले वनचारी हुआ है। भरत माताके चरणोंमें अश्रुपात करता हुआ गद्गद् वाणीसे कहता है।

राजस्त्रीबालवृद्धानां वधे यत्पापमुच्यते।
भृत्यत्त्यागे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम् ॥१॥

मद्यप्रसक्तो भवतु स्त्रीष्वक्षेषु च नित्यशः ।
कामक्रोधाभिभूतश्च यस्यार्योनुमतं गतः ॥२॥
यदग्निदाहके पापं यत्पापं गुरुतल्पगे ।
मित्रद्रोहे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम् ॥३॥
कारयित्वा महत्कर्म भर्ता भृत्यमनर्थकम् ।
अधर्मोयोस्य सोस्यास्तुयस्यार्योनुमतं गतः ॥४॥
नात्मनः सन्ततिं द्राक्षी स्वेषु दारेषु कश्चन ।
आयुः समग्रमुप्राप्य यस्यार्योनुमतं गतः ॥ ५ ॥

अर्थात् हे मातः जिसने धार्मिक रामचन्द्रजीके वनवास भेजनेमें सम्मति भी की हो, उसको राजाके वध, स्त्रीवध, बालवध, वृद्धवधमें और सेवकको बिना अपराध बलात् अपराधी कर छोड़नेमें जो पाप हैं, वह पाप हों ॥ १ ॥

वह सुरापी, जुवारी, वेश्यागामी, कामी, क्रोधी हो, जिसने इस काममें सम्मति की हो ॥ २ ॥

अग्नि लगानेवाले, गुरुस्त्रीगामी, मित्रद्रोही को जो पाप होते हैं, वह पाप उसको हों ॥ ३ ॥

उसकी सन्तान नष्ट हो जाय, स्त्री उसकी व्यभिचारिणी हो, वह अपनी आयुको न भोगे जिसने यह कर्म किया हो। क्योंकि सज्जनके त्याग व वृत्तिछेदनमें सम्मति देनेवालेको भी यह पाप लगने हैं। भरतजी ने कहा॥ ४-५ ॥

सपत्नीक भ्राता भरत इस प्रकार शपथ करता है माता कौशल्या को सन्तोष देकर भरद्वाजके आश्रम होते हुए भगवान् रामचन्द्रके समीप पहुंचकर उनके बन्दनीय चरणोंमें मस्तक रखकर बार बार अपनी माता कैकेईके निष्ठुर व्यवहार पर शोक करते हुए उनको राज्य करनेके लिये घर ले जानेका महान् अनुरोध करते हैं। कहते हैं प्रभो! ज्येष्ठ भ्राताका ही राज्य करनेका अधिकार है, आप नहीं जाते हैं तो मैं भी चरणोंमें बिचरूँगा। निदान आप पिताकी जीवित-कालीन प्रतिज्ञाको उल्लंघन करना रामचन्द्रजी, धर्मच्युत होना जान और भरतके हार्दिकभावसे प्रसन्न होते हुए अपनी पादुका उनको देकर कि अच्छा इनका पूजन कर तुम इस शिक्षा पर राज्यशासन करो, हम प्रतिज्ञात समयको बिताकर आवेंगे।

परस्त्री मातेव क्वचिदपि न लोभः परधनेन मर्यादाभंगः क्षणमपि न नीचेष्वभिरुचिः। रिपौ सौर्यं धैर्यं विपदि विनयः सम्पदि सतामिदं वर्त्म भ्रातर्भरत नियतं यास्यसि सदा ॥ ६ ॥

हे भ्रातः भरत! परस्त्रीको मातृतुल्य, किसीके धन पर इच्छा न करना, कभी प्राचीन मर्यादाको न तोड़ना, नीच पुरुषोंसे क्षणभर भी साथ न करना, शत्रु से सौर्य, बिपत्ति में धैर्य, सम्पत्तिमें नम्रता रखनेसे तुम्हारा कार्य अच्छा चलेगा ॥ ६ ॥

इधर देखिए लक्ष्मण जो रामचन्द्रजीकी सेवामें आत्मसमर्पण किए हुए हैं, एक समयकी बात है जब साध्वी सीताको रावण आकाशयानमें बिठाकर चुरा ले गया था। सीताजीने रामचन्द्रजी को मार्ग बतानेके लक्ष्यसे कुछ आभूषण उतारकर भूमिमें डाल दिये थे, तब रामचन्द्र उन भूषणोंको लेकर लक्ष्मणको देते हैं और कहते हैं कि प्रिय ! तुम पहिचानों तो क्या यह भगवती सीताके ही अंगभूषण हैं, लक्ष्मण कहते हैं :—

कुण्डले नैव जानामि नैव जानामि कंकणे ।
नूपुरावेव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥७॥

प्रभो ! कानके कुण्डल और हाथके कंकणको तो मैं नहीं पहचान सकता हूं, किन्तु पायजेबोंको मैं जानता हूँ कि भगवती सीताजीके हैं। क्योंकि उनके चरणोंमें प्रणाम करती बेर मैंने इनको देखा था ॥ ७ ॥

विचारिये, भारतवर्षके इस समुदाचार पर भरत, लक्ष्मणका सौतीया भाई होने पर भी किस तरह ज्येष्ठभ्राता और भ्रातृपत्नीसे व्यवहार था। जिन्होंने राज्यको भी ज्येष्ठ भ्राताकी पूजाकी अपेक्षा धूल समझा। ज्येष्ठ भ्राताकी पत्नीसे माताके समान व्यवहार किया। यदि देखिये इस समयमें क्या अन्तर है, लिखते लज्जा आती है। पूज्य कोटिमें प्रविष्ट होना है तो भ्रातृप्रेमको खूब विचारिये, कर्कशा स्त्रियोंके वशीभूत होकर भ्रातृप्रम रूपी सदाचार मत गँवाओ।

विद्याप्राप्तिके साधन

विद्याह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेव धिष्टेहमस्मि असूयकार्या नृजवेऽयतायन मा ब्रूया वीर्यवती तथास्याम्। य आतृणत्त्य-वितथेन कर्णावदुःखं कुर्वन्नमृतं सम्प्रयच्छन् तं मन्येत पितरं मातरंच तस्मै न द्रुह्या कत-मच्च नाह। अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा। यथैव ते न गुरोर्भोजनीयास्तथैव तान्न भुनक्ति श्रुतं तत् ॥१॥

उक्त श्रुतिवाक्योंसे विद्यार्थीके कर्तव्य और विद्याके साधन और फल सब स्पष्ट दिखाये गये हैं। विद्या शब्दका अर्थ किसी वाह्य शिल्पका ज्ञान मात्र नहीं या इंद्रियोंके केवल ज्ञानसे नहीं, बल्कि मानवीय जगत्में अलौकिक और दिव्य शक्तियोंका प्रकाश और सञ्चार जिस प्रयत्नविशेषसे मनुष्यदेहमें होता है, उसको विद्या कहते हैं शेष कला और शिल्प हैं ॥१॥

अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥२॥

विद्याश्चाविद्याश्च यस्तद्वेदोभयꣳ सह
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥३॥

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥४॥

इस नीतिकारके अनुभवसे भी परोक्षज्ञान विद्याका फल है ॥२॥

वेदवाक्यसे स्पष्ट है कि विद्याकी प्राप्तिसे मनुष्य अजर-अमर हो जाता है ॥३॥

मनुष्यदेहका मुख्य लक्ष्य दिव्य शक्तियोंकी प्राप्तिका है, तमसा विभूत सांसारिक देहमें दिव्य शक्तियोंका साक्षात्कार होना, बिना साधन सम्पत्तिके नहीं हो सकता। जीव अनेक योनियोंमें इन्द्रियों के स्पर्शोंको भोगता हुआ मनुष्ययोनिमें ही साधन सम्पन्न हो सकता है, यदि प्रमादवस साधन सामग्रीमें त्रुटि हो जाय, तो फिर चौरासीका फेरा अनिवार्य हो जायगा।

यह शक्ति केवल अखबारबाजी करनेसे या उपन्यास पाठ या स्वयं पुस्तकोंको रट लेनेसे या क्लब सोसाइटियोंकी बैठकसे प्राप्त नहीं होगी। जब उनका क्रमपूर्वक अनुशासन किया जायगा, तभी वह सम्पत्ति प्राप्त होगी।

अब इनकी प्राप्तिके लिये गुरु विद्या प्राप्तिका स्थान, विद्यर्थीके व्रत आदिकी आवश्यकता है, अन्यान्य विद्याओंके पारंगत होनेपर भी गुरु ब्रह्म विद्या निस्नात होना चाहिए। आत्मज्ञानके बिना अनुशासन या दूसरेमें प्रभाव डालना नहीं हो सकता, इसलिये गुरु और राजाको अध्यात्म विद्यानिष्ठ होना चाहिए ॥४॥ मनु :—

आन्विक्षिकिं चात्मद्विद्यां

वेदोंमें स्पष्ट आज्ञा है कि विद्या प्राप्ति गुरुकी कृपा बिना नहीं हो सकती है। बालकके ऊपर माता, पिता, गुरुके आचारका प्रभाव निरन्तर पड़ता है, संस्कार जो द्विजातियोंमें विहित हैं उनका प्रधानतया लक्ष्य बैजिक, गार्भिक दोषोंका दूर कर शारीरिक, मानसिक निर्मलतासे है। संस्कारोत्तर बालक गुरुकुलमें प्रविष्ट करवाये जाते थे। विद्याव्रत परिसमाप्ति काल तक उनका समावर्तन नहीं होता था। इस प्रकार आर्षकालीन पठनशैली थी, समयसे पहले माता, पिताके पास लौटना प्रायश्चित्त समझा जाता था। तब उन बालकों पर यदि गृहस्थमें कोई अनौचित्य स्पन्दन हुआ हो तो माता, पिताके कोई दूषित संस्कार बालककी मानसिक वृत्तिको विघ्नकारी नहीं होते थे। गुरुजनोंकी विद्यापीठ प्रायः उन पावन स्थलियोंमें रहती थी, जहां वन्यभूमि देवस्थान हो, जहां आकाशतत्त्व निर्मल हो, वहां पर भी प्रायश्चित्तादि व्रतोंके करनेसे किसी प्रकारके दोषोंकी उद्भावना कदापि नहीं हो सकती थी। अद्यावधि उत्तर भारत केदारखण्डमें कपिलाश्रम, कण्वाश्रम, जामदग्न्याश्रम भूमि है, जिस

कालमें इन भूमियोंमें निरन्तर सारस्वत ब्रतको धारण किये हुए महर्षिसंघ विराजते थे, वह समय भारतका शान्तिमथ कहा जाता था। अन्न, जल, वायु, जो जीवनके आधार हैं, यह सब पुण्यरूप थे, जब विद्या प्राप्ति ही विधिपूर्वक न हुई तो अविधि प्रयोगसे अन्न, जल, वायु, अग्नि पापरूप होकर देशोपद्रवकारी हो जाते हैं। विद्याकी उपयुक्तना अर्थात् पूर्ण योग्यता चार प्रकारसे होती है। आगमकाल, स्वाध्यायकाल, व्यवहारकाल, प्रवचनकाल इतना ही उपदेश पर्याप्त होगा जिस विधिसे जैसे देशमें अध्ययन किये हुए मनुष्य महर्षि, मुनि, ऋषिकी पदवीको अलंकृत कर गये, वह नियम अधिकांश श्रद्धेय हो सकते हैं। उनकी अपेक्षामें जहां अपूर्ण ज्ञानसे क्षयरोगादिके केवल विद्यार्थी होते जाते हैं। कौन पथ आश्रयणीय है, यह इतना ही से ज्ञान हो सकता है। जिस तरह उत्तम बीज वपन करनेके प्रथम भूमिका संस्कार करना परम आवश्यक है, इसी प्रकार विद्यारूपी बीज वपन करनेके प्रथम विद्यार्थीकी चित्तभूमिका संस्कार करना योग्य है, वह संस्कार व्रत और नियम पर निर्भर है। व्रतका अर्थ महर्षि पतंजलि लिखते हैं :—

व्रतश्च नामाभ्यवहारार्थं उपादीयते।
एवं क्रियमाणं अभ्युदयकारि भवति ॥५॥

अर्थात् दूसरे व्यवहारसे भी काम चल सकता है किन्तु ऋषियों की विधिसे काम करनेसे अभ्युदयकारी होता है अर्थात् बिना व्रतके भी विद्या पढ़ सकता है, किन्तु अभ्युदयरूपी फल इसी विधिसे प्राप्त हो सकता है ॥५॥

गुरु लोग कुशासन पर बैठकर पूर्वाभिमुख होकर विद्यार्थीको विद्या दान करते थे। वहां खच्चरोंके वाह्योग्य पुस्तक भार या रात दिनके रटनेसे नेत्रहीन, क्षयरोगी बननेका कराल अवसर प्राप्त नहीं होता था। बल्कि गुरुके स्वल्प उपदेश पर मेधाशक्ति इस प्रकार समुज्ज्वल होती थी। गुरु लोगोंके सूत्ररूप उपदेशसे विद्या साक्षात् हो जाती थी।

सुकेशा च भरद्वाजश्च सत्यकाम भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नास्तान् ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा संवत्सरं संवत्सथ यथाकामान् प्रश्नान् पृच्छथ ॥६॥

सुकेशा, भारद्वाज, सत्यकाम आदि ऋषि पिप्पलादके पास विद्या पढ़ने गये। पिप्पलादने कहा कि एक संवत्सर तक तुम व्रत पूर्वक निवास करो, तब मैं जो कुछ तुमलोग पूछोगे, बता दूंगा॥ ६॥

उस समय विद्यार्थीसे यह प्रतिज्ञा नहीं कराई जाती थी कि एक या दो घंटे पढ़ानेकी यह फीस ठैरा लो बल्कि उसको व्रताचरण, तपस्याकी अवश्यकता समझाई जाती थी। विद्याकी प्राप्ति दुष्कृतोपादित धन व्ययसे नहीं होती है, वह केवल विधिपूर्वक व्रताचरण द्वारा गुरूपदेशसे होती है। जिन्होंने पढ़ा है वे जान सकते हैं कि विद्याका प्रकाश विद्यार्थी दशाके शुद्ध व्रत व मलिन व्यवहार पर

निर्भर है। पढ़े हुए पशु अनपढ़ विद्वान् इसके उदाहरण हैं। यदि पढ़कर भी टेढ़ी चाल, तिर्छी मुद्रा, दम्भाचरण, अदूरदर्शिता ये विधिसाधनके रोग हैं। वे रोगी वैद्यक विज्ञानके शत्रु सुशील जीवनी के गलग्रह हैं।

श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तꣳह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यं न वै सोम्याऽस्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवति सह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंशतिवर्षं सर्वान् वेदानधीत्य महामना अनूचान मानीस्तब्ध एयाय ॥७॥

श्वेतकेतुको उसके पिताने उपदेश किया कि बारह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रतको धारण करो तब वास्तविक विद्याकी प्राप्ति हो जायगी, क्योंकि हमारे कुलमें अभी तक कोई अविद्वान् नहीं हुआ इसी ब्रह्मचर्यके प्रभावसे श्वेतकेतु पूर्ण ब्रह्मज्ञानी हो गये॥ ७॥

उपकोशलो ह वै कामलायनः सत्यकामो जावाले ब्रह्मचर्यं उपास तस्य द्वादशवर्षाण्यग्नीन् परिचचार ॥८॥

सत्यकाम, जावालिके आश्रममें विद्या पढ़ने गये, उन्होंने उपदेश दिया कि द्वादश वर्ष ब्रह्मचर्य व्रत धारण करो, तब उस व्रतके प्रभावसे तुम्हें विद्या साक्षात्कार होगी॥८॥

वह समय इस देशकी पूजाका था जब व्रत नियमनिष्ठ ब्रह्म-चारी इस देशमें विचरण करते थे, उस समय इस देशकी यह प्रतिष्ठा थी कि :—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥६॥

इस देशके आदर्श पुरुष देशान्तरीय मनुष्योंके शिक्ष्य कहाते थे ॥ ६ ॥

विद्याप्राप्तिका मुख्य साधन ब्रह्मचर्य व्रत और इष्ट देवोपासना तथा गुरुमें पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिए ।

पाणिनीय आचार्यको शंकरकी कृपासे, कालिदासको भगवती महाकालीकी कृपासे विद्या प्राप्त हुई । अतः यथार्थ ज्ञान प्राप्तिके लिये ईश्वराराधन और ईश्वराराधनका चरित्र भी परम आव-श्यक है ।

विद्यार्थियोंके लिये विशेष बातें

(१) नित्य उषाकालमें जागना।

(२) प्राणायाम नित्य बढ़ाते जाना, प्राणायाम करनेसे वृत्ति स्थिर होकर प्रतिभाशक्तिका संचार होने लगता है।

(३) वस्त्र सीधेसादे स्वच्छ धारण करना, जिससे पवित्रता और निरभिमानता बनी रहे।

(४) दौर्बल्य न हो तो सीतलजलसे स्नान करना।

(५) भोजन लघुपाक सात्त्विक होना चाहिये।

(६) मानाभिमानरूपी मलसे बचनेका प्रयत्न नम्रभाव है।

(७) बाजारोंमें घूमना, गप्पबाज होना यह रोग है।

(८) जो कुछ बात कहे उसको सत्यसे विशुद्ध कर ले।

(९) स्मृति बढनेका प्रथम उपाय पवित्राचरण, लघुपाक भोजन, प्राणायाम, एकान्तवास हैं।

(१०) ब्रह्मी, पीपल, कालीमिर्च, मिशरी मिलाकर तुलसीपत्रके साथ नित्य सेवन करे।

(११) प्रतिमास दो या तीन व्रत अवश्य करे।

(१२) पाठ दो प्रकारसे याद रहता है (क) शाब्दीभावना (ख) आर्थीभावना।

(१३) शाब्दीभावना शब्दके प्रथम अक्षरको याद रखना उससे पाठ याद कर लेना।

(१४) आर्थी भावना शब्दके अर्थको स्मरण रखकर उसके अनुसार शब्दको याद कर लेना।

(१५) आस्तिकता, चित्तशुद्धि सबसे प्रथम प्रयोजनीय उपाय है।

यौवन-विज्ञान

बाल्यावस्थाके परिवर्तन होनेपर मनुष्य युववास्थामें प्रवेश करता है। यह वह अवस्था है, जब उसके शरीरकी शक्तियोंमें पूर्ण जाग्रति हो जाती है और उन शक्तियोंका जैसे जैसे विकाश बढ़ता जाता है, वैसे वैसे वे शक्तियां प्रबल होती जाती हैं। इस अवस्थामें मनुष्यका केवल रंग-ढङ्ग ही नहीं बदल जाता, वरन् उसका मन और शरीर भी सम्पूर्ण रूपसे नया हो जाता है। उसका सारा कलेवर ही और का और हो जाता है, यह परिवर्तन बालक-बालिकाओंके प्रायः चौदहवें वर्षसे होने लगता है।

जिस प्रकार लौकी और कुम्हड़ेकी लतामें पहिले पहिल फल देखकर हम इस भ्रममें पड़ जाते हैं कि अब इनमें फल लगनेवाले हैं, पर यह नहीं समझते कि ये पहिले पहिलके फूल थोड़े ही कालमें मुर्झाकर झड़ जायेंगे, उसी प्रकार यौवनकालकी क्षणिक उत्तेजना और बलका अनुभवकर जो अज्ञानी युवक अपनेको पूर्णतया योग्य समझ बैठे हैं, और सांसारिक सब कामोंमें अपना सिक्का जमाते हैं,

वे अपनी दुर्बलतासे शीघ्र ही दुःखित हो जाते हैं, और फिर प्रौढ़ अवस्थामें बहुत पश्चात्ताप करते हैं।

यौवनकालके आते ही मनुष्यके अन्दर जीव तंतुकी क्रियामें परिवर्तन होता है, और वैज्ञानिकोंका मत है, कि इस अवस्थामें प्रवेश करते ही मनुष्यके शरीरमें एक ऐसा द्रव्य पैदा हो जाता है जो अन्दर ही अन्दर पसीजकर रुधिरमें मिल जाता है। इसी द्रव्यके प्रभावसे हम सबोंमें इतनी तीव्रता, आँखोंमें ज्योति,मुखपर सुन्दरता, छातीमें अकड़, चालमें गर्व इत्यादि हो जाती है।

यद्यपि युवावस्था ही जीवनके सम्पूर्ण भावोंको विकाश करने-वाली बलवान् अवस्था है, तथापि इस अवस्थामें प्रायः इन्द्रियोंका वेग अनिवार्य हो जाता है, और मनुष्य अपने काबूमें नहीं रहता और ऐसे ऐसे पापोंके करने पर उतारू हो जाता है कि उसे जीवनपर्यन्त कभी सुखप्राप्ति नहीं होती।

युवा पुरुषको सदैव पद-पदपर खबरदार रहना चाहिए और जिन-जिन बातोंसे उसका दैहिक तथा मानसिक संबंध है, उन-उन बातोंको उसे शुद्ध कर लेना चाहिये। युवा अवस्था ही का दूसरा नाम गृहस्थाश्रम है, अथवा इसीमें मनुष्य गृहस्थ हो जाता है। अतएव इस अवस्थामें आते ही मनुष्यका कर्तव्य है कि वह विवाह करे। विवाह कोई साधारण बात नहीं, न वह जैसा कि आजकल गुड्डा-गुड्डियोंका खेल मान रखा है। वरन् एक पवित्र संबंध है, जिस पर सारे जीवनका दारोमदार है, अतएव हमें इस पर ज्योतिष-शास्त्रके अनुभविक सिद्धान्तोंके अनुसार विचारकर करना चाहिये।

ये विचार तीन प्रकारके हैं :—

(१) जन्मपत्री या सामुद्रिक विचार

(२) शारीरिक बलके अनुसार

(३) वात्स्यायन ऋषिके काम सूत्रके अनुसार

वात्स्यायन ऋषिके मतानुसार स्त्रियां चार प्रकारकी होती हैं।

१. पद्मिनी.
२. चित्रिणी.
३. शंखिनी
४. हस्तिनी.

स्त्री शब्दको संस्कृतमें नारी कहते हैं। नारी शब्दका अर्थ 'न अरि' अथवा जो दुश्मन न हो, उसे नारी कहते हैं।

पद्मिनी वह नारी है जिसमें ये गुण विद्यमान हों। मुख चंद्रमाके समान, शरीर मांसल शिरसाके पुष्पोंके समान कोमल, पीतकमलके समान सुन्दर वर्ण जिसमें कृष्णवर्णका लेश भी न हो और जो युवावस्थामें जैसे कि आसन्न मेघकी भांति प्रतीत हो, जिसके कान लाल रक्तके समान हों, जिसके स्तन सुन्दर व कठोर, जिसकी नासिका लम्बी हो, उसका कंठ कंबु समान सुन्दर होता है। उनका काम सलिल नव खिलित नलिनिकी सुगन्धिके समान सुगन्धित होता है। उसकी चाल राजहंसकी चालकी सदृश होती है। उसका वार्तालाप मधुर कोकिल पक्षीके भांति होता है, और उसे श्वेत वस्त्र धारण करनेमें अति आनन्द होता है। वह अल्प भोजन करती, थोड़ा सोती, और जिस प्रकार वह चतुर तथा विनीत होती है, उसी

प्रकार पूज्य तथा धार्मिक भी होती है। उसका चित्त सदैव ईश्वर-सेवामें लगा रहता है और उसे साधु, महात्माओंसे बार्तालाप करनेमें अति आनन्द मिलता है। ऐसी नारीका सम्बन्ध हंस जातिके मनुष्यसे होना चाहिये।

चित्रणी नारीके गुणः—इसका कद साधारण न बहुत छोटा न लम्बा, मधु-मक्षियोंके समान काले केश, कृषांगी, गोल और शंखके समान कंठ, कोमल शरीर, सिंहके समान कटि, उसकी चाल विलाशपूर्ण हाथीकी चालके समान और वाणी मयूरके समान होती है। गानविद्याकी प्रेमी होती है, उसकी विषय-वासना बहुत तीव्र होती है, और उसे तोता, मैना इत्यादि पक्षियोंसे बहुत प्रेम होता है। ऐसी नारीका सम्बन्ध शशजातिके पुरुषोंसे होना अति उत्तम है।

शंखिनी नारीके गुण :—यह पैत्तिक प्रकृति होती है। इसका शरीर सदैव गरम तथा स्थूल वर्ण पिंगल होता है। कटि भारी, हाथ, पैर तथा सर छोटा होता है। उसकी वाणी कर्कशा तथा कटु होती है। उसे अच्छे-अच्छे वस्त्र पहिरने तथा पुष्प व आभरण पहिरनेमें अति आनन्द होता है। ऐसी नारीका सम्बन्ध वृषभ पुरुषके साथ होनेमें जीवन भर सुख होता है।

हस्तिनी स्त्रीके लक्षण :—कद छोटा, हृष्टपुष्ट, स्थूल शरीर, वाणी कटु और कंठ झुका हुआ होता है। उसकी चाल धीमी होती है। ऐसी नारी अश्व पुरुषके योग्य है।

इस प्रकार वात्स्यायन ऋषिके सिद्धान्तोंके अनुसार संबन्ध हो तो स्त्री पुरुषको जीवन भर आनन्द प्राप्त होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं।

१. हंस

२. शश

३. वृषभ

४. अश्व

हंस पुरुषके लक्षण पद्मिनी नारिके समान होते हैं। मुख चन्द्रमाके समान, शरीर मांसल, मस्तिष्क ऊँचा। मृगके समान नयन, सिरसपुष्पके समान कोमल शरीर इत्यादि। यह मनुष्य बड़ा तेजस्वी व धार्मिक होता है और ईश्वरप्रेममें सदैव अनुरक्त रहता है।

शश पुरुषके लक्षण चित्रिणी नारीसे मिलते हैं और वह ऐसी (चित्रिणी ही) नारीके योग्य कहा है।

वृषभ पुरुषके लक्षण शंखिनी नारीके योग्य हैं और उसका संबंध शंखिनी नारीसे होना चाहिये।

अश्व पुरुषका सम्बन्ध हस्तिनी नारीसे होना चाहिए क्योंकि शास्त्रोंके अनुसार इसके लक्षण हस्तिनी नारीसे मिलते जुलते हैं।

स्त्री-पुरुषका कर्त्तव्य

मनुष्यजातिके अतिरिक्त दूसरे जीवोंको इतनी शीघ्रतासे प्रौढ़ होते देखकर यह जान पड़ता है कि उनसे प्रकृतिका केवल यही अभिप्राय है कि जैसे-तैसे वे सहवास-क्रियाके योग्य हो जायँ, बच्चे जनें व मर जायँ। उनके जीवनका दूसरा उद्देश्य ही नहीं होता। इसके प्रतिकूल संतानोत्पत्तिसे ही मनुष्यका जीवन सार्थक नहीं होता। वह अपनी आयु भर अपनी जाति और राष्ट्रके शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक स्वभावमें यत्न करके अपने युगके धर्म और सभ्यतामें योग देता है। संतानोत्पत्तिमें उतावली करनेसे हानि होना सर्वथा निःसन्देह है। जो मनुष्य नारी-पुरुषका सम्बन्ध केवल पशुओंकी तरह विषयके लिये समझे हुए हैं, वे नर स्वयं पशु हैं और उनसे जो सन्तान उत्पन्न होती हैं, वह प्रायः मातृ-पितृ-भक्त नहीं होती और विषय-कामनामें पशु-समान तत्पर रहती है। इसके अतिरिक्त अनुचित व अनियम स्त्री-पुरुषके सहवाससे उत्पन्न हुए बालकोंको अनेक रोग होते हैं और अपने माता-पिताके अत्याचारसे ये निर्दोष बालक इन पैतृक-रोगोंसे पीड़ित जीवन भर घोर यातना में तड़फते रहते हैं। अतएव युवावस्था होने पर स्त्री-पुरुषके धर्म (रतिधर्म) को शास्त्र-रीति पर जान लेना चाहिये, अन्यथा पातकी, दरिद्री और निर्बल सन्तान होना अनिवार्य है।

पुरुषको वीर्य-रक्षा करना अर्थात् ब्रह्मचर्यसे रहना सब धर्मोंसे श्रेष्ठ है। वीर्यको अनुचित और दूषित रीतिसे नष्ट करनेमें भ्रूण-हत्याका पाप लगता है। वीर्यरक्षाके निमित्त कुछ बातें अगले अध्याय में लिखी जायँगी।

स्त्री-पुरुष सहवास नियम अनुसार और समय पर होना चाहिए। याज्ञवल्क्यमें कहा भी है :—

षोडशर्तु निशा स्त्रीणां तस्मिन् युग्मासु संविशेत्।
ब्रह्मचर्यैव पर्वण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत् ॥

मनुष्यको उचित है कि ऋतु-स्नाता स्त्रीको जब ४ दिन हो जायँ, तब १६ दिन तक गर्भ धारणके निमित्त स्त्रीके साथ सहवास करे।

यह सहवास अमावस्या, संक्रान्तिके दिन निषेध है। इन दिनोंमें सहवास करनेसे आयुका नाश हो जाता है और जीवन-पर्यन्त प्रमेह आदि रोगोंसे पीड़ित रहता है।

जब स्त्री या पुरुषके व्रत हों या ज्वर आदि रोगसे व्यस्त हों, या चित्तमें कोई शोक हो या व्यायाम करके आया हो या मन शान्त न हो या स्त्रीके रजोधम होनेमें ६ दिन बाकी हों, ऐसे समयमें सहवास कदापि न करना चाहिए।

इसी प्रकार देव-मन्दिर, धर्म-सम्बन्धी आदि स्थानोंमें सहवास करनेसे मनुष्यकी आयु क्षीण होती है।

गर्भके पश्चात् व गर्भ धारणके समय माता-पिताको शान्त-चित्त और धार्मिक रहना चाहिए। माता-पिताकी गर्भ धारणके समय जैसी वृत्ति रहती है, ठीक वैसी ही वृत्ति उसके सन्तानमें हो जाती है। अतएव गर्भावस्थामें नियमपूर्वक रहना चाहिए।

स्वप्नदोष

वीर्यका अन्दर ही अन्दर घुलना सदैव उत्तम है। उसका उपयोग केवल संतानोत्पत्तिके लिये है। १८ वर्ष तकके बालकका सन्तानोत्पत्तिसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है। बेचारेकी न अभी हड्डियाँ बनी हैं, न अङ्ग पका है, न विद्याध्ययन समाप्त हुआ है और न जीविका ही का कोई सहारा ठीक हुआ है। शास्त्र और समाजकी ओरसे भी यह बात निषेध है।

आज कलके नवयुवकोंको देखिए। १६ या १७ वर्षकी अवस्थामें ही उनकी ६० या ७० वर्षकी अवस्थावालोंकी-सी दशा हो जाती है। होठों पर पपड़ियाँ पड़ जाती हैं, सिरके बाल झड़ जाते हैं, बदनका चमड़ा ढीला हो जाता है, चेहरा पीला हो जाता है और ये युवकगण क्षय रोगसे पीड़ित होकर सदैव नैनीताल, अलमोड़ा आदि स्थानोंमें हवा खानेके लिये तत्पर रहते हैं।

अब यह विचार करना चाहिए कि उनकी यह दुर्दशा क्यों होती है। यह सब उनके दुश्चरित्रोंका परिणाम है। आजकल जो नवयुवक बुरे-बुरे उपन्यास पढ़ते हैं, तथा बुरी सुहबतमें रहते हैं, यह सब उन्हींका फल है। गीतामें कहा है :—

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते ।

जब मनुष्य बुरी पुस्तकोंको पढ़ कर या बुरी संगतिमें रहकर अपने ध्यानको विषय-वासनाकी ओर ले जाता है, तभी उसे बुरी बातोंका संग होता है। अतएव अपनी वीर्यरक्षा और शरीररक्षाके लिये मनके भाव और मनके संकल्पको उन पुस्तकों और पवित्र संगति, जिससे मनके भाव शान्त और लज्जावान् स्वभाव बने, पढ़कर करना चाहिए। अत: शास्त्रमें लज्जा ही धर्मका प्रधान अंग युवावस्थाका सहायक बताया गया है। यह बात दृढ़ताके साथ समझ लेनी चाहिये कि इस संसारमें हमारे भले, बुरे परिणामोंका प्रबल कारण हमारा संकल्प है। जैसे-जैसे संकल्प मनुष्यके मनमें उदय होते हैं, वैसे-वैसे कार्योंसे उनका सम्बन्ध बलात् होता जाता है। अतएव नित्य शुद्ध, पवित्र संकल्प बनाना ही जीवनका प्रधान कर्त्तव्य है।

यह सत्य है कि प्रत्येक नवयुवकका समय-समय पर निद्रामें वीर्य स्खलन हो जाता है, यह भी उनके अपवित्र संकल्पका परिणाम है। ऐसी ही अपवित्र भावनाएँ जब उनके मनको सताने लगती हैं, तब वे नवयुवक हस्तमैथुन क्रिया करने लग जाते हैं, जिससे वीर्यको अनुचित रीतिसे पात करते हैं, जो बिलकुल निषेध है। इसी प्रकार परस्त्री-गमन आदि अन्य व्यभिचार जिनके द्वारा वीर्य शरीरसे धक्का देकर बाहर व्यर्थ फेंका जाता है, सहस्रबार अधिक हानिकारक है। पर वे इसे तब तक बिलकुल ही नहीं समझते

जबतक कि प्रमेह, उपदंश आदि घृणित रोगोंके ग्रास नहीं होते। हाय ! इस दशासे हमारे नवयुवकोंको सावधान रहना चाहिए और अपने जीवनको ऐसे-ऐसे घोर परिणामवाले रोगोंसे बचाना चाहिये, जिससे उनकी सन्तान पूर्ण आयु पावें और सुखसे अपना जीवन बितावें।

स्त्री-पुरुषका कर्तव्यका ज्ञान शास्त्रीय दृष्टिसे स्त्री-पुरुष प्राप्त करें। यह सम्बन्ध जैसे आजकलके बहिर्मुख दृष्टि वाले मानते हैं, वह नहीं है। यह धर्म सम्पादनके लिए गृहस्थ-आश्रमके नामसे कहा गया है। गृहस्थाश्रम विषय-लम्पटताके लिए नहीं है और नहीं केवल सन्तति उत्पन्न करनेके लिये है, बल्कि पति-पत्नी मिल कर अग्नि देवकी उपासना कर मन, बुद्धिको पवित्र कर इस धर्मका पालन करें। घरमें जिन पिता, भ्राता, मातासे सम्बन्ध है, उसे किस प्रकार निभाना चाहिये, यह जैसा आदर्श भगवान रामका है, उससे सीख लीजिये। पति-पत्नी, माता-पुत्र, श्वसुर, बधू, भ्राता भगनी इनके धर्मोंको निभाना स्त्री पर है। पिता-पुत्र, भाई-भाई, माता-पुत्र इनका निभाना पुत्र पर है। स्त्रीको शास्त्रमें सोम और पुरुषको रवि कहा गया है। स्त्रीमें शान्ति प्रधान और पुरुषमें तेज प्रधान है। स्त्रीके गुण पुरुषमें हों और पुरुषके गुण स्त्रीमें हों, यह विपरीत भावना नाशकारिणी कही गयी है :—

अबला यत्र प्रवला शिशि रविनीता निरक्षरो मंत्रि।
नहि नहि तत्र धनाशा जीवनाशापि दुर्लभा तत्र॥

जिस घरमें पुरुषसे ज्यादे बलवाली स्त्री हो, बालक विनम्र न हों, मन्त्री मूर्ख हो; वहाँ धनकी आशा करना निर्थक है। यदि ऐसे गृहस्थके घरमें जाकर प्राण भी बच जायँ तो श्रेष्ठ है।

शास्त्रमें योग और क्षेम दो शब्द आते हैं। योग उसे कहते हैं जो वस्तु प्राप्त न हो, उसको पाना क्षेम, प्राप्त हुए की रक्षा करना। योगका कार्य पुरुषके ऊपर है और क्षेम स्त्रीका कर्त्तव्य है।

गृहस्थको अतिथि पूजन, पड़ोसियोंसे सद्व्यवहार आदि धर्म सीखने चाहियें। स्त्रियोंको जहाँ तक हो लज्जाका पालन, सास, श्वसुरकी आज्ञाका पालन करना, पतिका पूजन करना परम कर्त्तव्य है। पतिके लिये स्त्रीका सत्कार, माता-पिताका पूजन करना परम धर्म है।

जो स्त्री-पुरुष माता-पिताका तिरस्कार कर वृद्धावस्थामें उनकी परवाह नहीं करते हैं; उनके दोनों लोकोंका जीवन नष्ट होकर नारकीय गति मिलती है। पुस्तकोंकी रटी हुई विद्यामात्रसे अपने को योग्य समझने वाली स्त्रियाँ योग्य नहीं हैं। विद्याके साथ चरित्र का होना परमावश्यक है। चरित्रका अर्थ समझनेमें इस समय एक जटिल समस्या बन जाती है। वे पूछते हैं—करेक्टर-चरित्र किसे कहते हैं। उनका ख्याल है कि होटलोंमें गप्प मारना, ताश, खेलना, अकेलेमें पर-स्त्रीसे मिलना, निर्लज्ज बाजारोंमें घूमना—क्या यह चरित्र नहीं है। इसे भी वह चरित्र शब्दकी परिभाषामें लाते हैं!

चरित्र उस व्यवहारको कहते हैं, जिससे मन शान्त और इन्द्रिय अपने अधिकारमें हो तथा निरभिमाननाका व्यापार हो।

इसलिए महात्माओंके व्यवहार जो शास्त्रीय जीवन है, उसे चरित्र कहते हैं। भारतवर्षकी कन्याओं और बालकोंको चाहिए कि यह भारतवर्ष जिन बातोंसे संसारकी निगाहमें पूज्य माना जाता था, उसी चरित्रका अनुकरण करें। स्त्रियोंके लिये सीता, सावित्री और पार्वतीका आदर्श तथा पुरुषोंके लिये राम, युधिष्ठिरका आदर्श है। यह धारणा भूल कर भी न रखो कि जो पुरुष दुराचारी हो, वह अपनी स्त्रीको सदाचारी देखना चाहे। दुराचारीको अधिकार भी नहीं कि वह अपनी स्त्रीको सदाचारिणी रहनेके लिये कह भी सके। यदि सदाचारी मनुष्य चाहे तो व्यभिचारिणी स्त्रीको भी सदाचारिणी बना सकता है।

माता-पिताके आचरण पर ही सन्तानका आचरण निर्भर है। यदि सन्तानका श्रेय चाहते हैं तो स्वयं अच्छे आचरण बनावें। अभिमन्युने तो गर्भवासमें ही विद्या पढ़ ली थी। स्त्रीको पहले पुत्री-धर्मका पालन, पीछे स्त्री-धर्मका पालन और सन्तान होने पर मातृ-धर्मका पालन करना चाहिए।

अच्छी सन्तान बिना ईश्वरकी कृपाके हो नहीं सकती है। रुक्मिणीने भगवान कृष्णसे पुत्र प्राप्तिके लिए कहा था, तब भगवान कृष्ण बोले कि रुक्मिणी, इस प्रकारकी सन्तान बिना शिवकी आराधनाके नहीं मिलेगी। तब दोनों कैलाशमें गये और शिवकी आराधनासे १०० पुत्र मिले। यदि योग्य संतान चाहते हो तो भगवानकी आराधना अवश्य करो। यदि पुत्रको दयावान, दीर्घायु, मातृमान्, पितृमान चाहो तो। इस समय बिना घोर कष्टके भी

जैसे माता बालक उत्पन्न कर दूध पिलानेके लिये दाई रख लेती है, स्वयं दूध नहीं पिलाती वह सन्तान दीर्घायु, धार्मिक और मातृमान नहीं होती है। स्मरण रहे कि इस प्रकारकी घटना तुम्हारे आगे न आवे। अपनी सन्तानको स्वयं छाती पर लगा कर अपना दूध पिलावे, जो प्रकृतिने उसके लिये निर्माण किया है। वह बालक कटुभाषी होता है, जिसे स्वयं अपनी माताका दूध नहीं मिलता है।
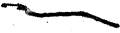
स्त्री-धर्म

संसारके जीवनमें स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध शास्त्र दृष्टिसे धर्म सम्बन्ध बताया है

"सहयज्ञा प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति
अनेन प्रसविध्व मेषवोस्तिष्ट कामधुक"

सृष्टिकी रचनाके साथ-साथ यज्ञकी रचना की गई है, यज्ञ संपादनकी सहायक स्त्री होती है। इसलिये उसे पत्नी कहा है। पत्नीका अर्थ "पत्युर्नो यज्ञ संयोगे" अर्थात् यज्ञ सधान जिसके साथ होता है, उसे पत्नी कहते हैं। आर्य संस्कृति–पत्नोकी विद्यमानतासे ही यज्ञ सम्पादन मानती है, आगे यज्ञ सृष्टि क्रमका द्योतक है, और सृष्टिसे ही दैवि सम्पदाके मनुष्य होते हैं। वह याज्ञिक सृष्टि स्त्री-पुरुषके सम्बन्धपर ही निर्भर है, अतः स्त्री-पुरुषका धर्म जानना अधिकारमें परिणत करना, आर्य जीवनी है, सृष्टि क्रममें मनुका कथन है,—

"द्विधाकृत्वात्मना देहं अर्धेन पुरुषो भवत्
अर्धेन नारितस्यां सा विराज मसृजन प्रभु"

सृष्टि-क्रममें हिरण्य गर्भके आधे भागसे पुरुष और आधे भागसे स्त्री बनी है, इसी तरह दुर्गा रहस्यमें आता है, भगवति पराशक्तिसे शक्तियाँ और ब्रह्मा विष्णु इत्यादि हुए।

तात्पर्य यह है कि स्त्री-पुरुष दोनों भगवान्‌की सृष्टिमें समान हैं, और उनका पारस्परिक समान दायित्व है, क्रियात्मक शक्ति स्त्री कारणात्मक शक्ति पुरुष, अव्यक्त विन्दुसे व्यक्त शुभ्र विन्दु पुरुष रक्त विमर्श शक्ति स्त्री है, संसारकी कोई भी क्रिया बिना स्त्रीके नहीं होती है, यह संसार जो कुछ भी आपको भासता है, यह सब विमर्श या अनादि महामाया प्रकृतिकी ही लीला है, स्त्री की प्रतिष्ठा पूजा उतनी ही है, जितनी पुरुषकी, बल्कि भारतवर्षीय दिव्य विज्ञान दृष्टिसे तो स्त्रीका सम्मान पूजा और भी अधिक है, शक्ति तत्वमें कहा है,

स्त्रीयासमस्ता सकला जगत्सु

सारो संसारमें स्त्रीका स्वरूप जो दीख पड़ता है, वह स्वरूप उस चित् शक्ति या महामायाका है, इसलिए अन्य शास्त्रकारोंने "स्त्रियोरक्ष्यतः स्मृता" कहा है, कि स्त्रियोंको सब प्रकारसे रक्षा करनी लिखी है, जो उत्तम्र बहुमूल्यवान वस्तु होती है, उसकी रक्षा विशेष रूपसे की जाती है

Better या infiror का ख्याल गलत है। पुरुष रई और स्त्रो सोम है। पुरुष जीवन तेज स्त्री अमृतकी आधार है। दोनों ही का कर्तव्य और दायित्व संसार-यात्राके लिए समान है, मुख्य या गौण बतलानेका आवकाश नहीं रहता है।

कितनोंने इसका यह तात्पर्य निकाला कि स्त्री हमारा एक प्रकार का धन है, यह नहीं बल्कि स्त्री हमारी यज्ञ, साधनकी देवी है यह उनका तात्पर्य है।

मनुष्यका शरीर चुम्बकीय सिद्धान्तके अनुसार है "Magnetism" जैसे चुम्बकका एक धनात्मिक धुरा (Positivepole) दूसरा ऋणात्मक (Negativepole) है। धनत्मक वह है जिससे किसी वस्तुको आकर्षण करते हैं। ऋणात्मक जिससे किसी शक्तिको बाहर निस्सरण करते हैं। दाहिना अंग धनात्मक, बायाँ ऋणात्मक होता है। यही कारण है कि दाहिनेकी अपेक्षा बायाँ अंग निर्बल होता है। मानव जीवन तत्वमें योग और क्षेम पर ध्यान देना प्रधान बात बताई गई है। योगका अर्थ किसी शक्ति या पदार्थ जो कर्म फल हो उसे प्राप्त करना है। क्षेम प्राप्ति ही वस्तुकी रक्षा करना है। योग करना पुरुषका कर्त्तव्य, क्षेम स्त्रीका कर्त्तव्य है। मनुष्य अपने दाहिने अंगसे वस्तुओंको खींचता है और बाँये भागसे शक्तिको बाहर देता है। पुरुषके जीवनमें प्रधानतया स्त्रीकी अपेक्षा तप, भजनकी शक्ति और धैर्य, ब्रह्मचर्य, आचारनिष्ठा, ज्ञाननिष्ठा शौर्य अधिक होता है। स्त्री घर पर रहकर धर्म तथा जाति-व्यवहार सम्पत्तिकी रक्षा करती है। इसलिए पुरुषका कर्त्तव्य होता है कि उसे बामाँग भागमें आसन दे, ताकि पुरुषमें स्त्रीकी सहायतासे जो तप आदि क्रिया है, वह उसे अपने दाहिने बाजूसे आकर्षण करे और पुरुष बामांग भागसे देवे। इसीलिए कहीं-कहीं स्त्रीको बामांगी भी कहा गया है। जो जिसका ऋणी होता है, वही उसके बाम भागमें बैठता है।

जो इस रहस्यको नहीं जानते हैं, स्त्रियोंके प्रति जिनकी श्रद्धा और उच्च धारणा नहीं है, वे उसे बामाङ्ग न देकर दाहिने बाजूमें

बैठाकर उसकी शक्तिका ह्रास कर वे पुरुष भी स्त्रीकी शक्ति प्राप्त करनेपर भी पूर्ण तपोमय जीवन नहीं बना सकते हैं। स्त्रीको जितने कठिन जिम्मेदारीके कर्म्म करने पड़ते हैं, उतने पुरुषको नहीं। इससे पहले कन्याका नाम दिया जाता है, उस अवस्थामें कन्याके धर्म कौमारव्रत, मातृ-पितृ सेवा, भ्रातृ-भगनीका आदर आदि धर्म निभाने पड़ते हैं। जब विवाह हो जाता है, तब बहु, भाभीके धर्म पतिके साथ यज्ञादि व्यवहार, सास, श्वसुरकी सेवा आदि विवाह होनेपर उस कन्याके स्त्री रूपमें क्या धर्म हैं उनको सूक्ष्म शब्दोंमें कण्व ऋषिने शकुन्तलाके विवाहके समय कहा है :—

अर्थात् विवाह होनेके अनन्तर सास-श्वसुरकी भक्ति, आज्ञा-पालन वैसे करना जैसे कुमारी अवस्थामें तुम्हें बताया है 'मातृदेवो भव पितृदेवो भव' इत्यादि।

इस समय विवाह कर मियां बीवी जैसे नाचने चले जाते हैं, यह भारतीय संस्कृति नहीं थी। सास-श्वसुर, देवर पड़ोसी आदि से कैसा व्यवहार करना यह सब धर्म गृहस्थाश्रममें समान रूपसे पालन करनेके थे।

स्त्री, पतिको देवता, पति स्त्रोको देवी समझकर धर्मका विचार करते जाते थे। याज्ञवल्क्य मैत्रीयीका सम्वान्द वृहदारण्यकमें आता है। मैत्रेयी नित्य सुखका प्रश्न करतो है। याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं:— "नवाअरे पत्युः कामाय प्रतिप्रियो भवति" कोई स्त्री या पुरुष पतिके लिये प्रेम नहीं करतो है, पति स्त्रीके सुखके लिये स्त्रीसे प्रेम करता है। अपना सुख अपने आनन्दके लिए, एक दूसरेसे प्रेम करते हैं।

इसलिए तुम अपने आपको विचारो वही कल्याण है। नीतिकारने स्त्रीके शुभ लक्षणका वर्णन इस प्रकार किया है कि 'कार्येसु मन्त्रि' मातृ धर्म और सम्मान दानमें मन्त्रि धर्म इत्यादि दिखाया है। पातिव्रत और पत्निव्रत ये दोनों समान हैं। एकके टूटने पर दूसरा नहीं रह सकता है। शास्त्र तो यह बताता है कि पापी पतिके साथ प्रायः स्त्री पापिनी होती है, स्त्रीके पाप पुरुषपर लग जाते हैं, पुरुषके स्त्रीपर पाप लगते हैं। याज्ञवल्क्यका कहना है:—

यस्य भार्या सुरां पिवेत् आदि ॥

जिस पुरुषकी स्त्री शराब पीवे उस पुरुषका प्रायश्चित्त भी नहीं हो सकता है। वह महापापका पातित्य पा चुका—अर्थात् उसका आधा अंग पतित हो चुका है।

तात्पर्य विवाहके अनन्तर दाम्पत्य सम्बन्धको आप धर्मानुकूल व्यवहार कर जैसे इसीके आचार प्रकरणमें दिया है, वैसा करनेसे आपका धार्मिक दाम्पत्य सम्बन्ध इहलोक, परलोकमें सुखदायी होगा। स्त्री-पुरुष दोनोंको ब्रह्मचर्यसे रहनेकी शास्त्रकी आज्ञा है। ऋतुकालके अतिरिक्त प्रसंग करनेसे पतित होता है। विशुद्ध व्यवहार होता है, तो उनकी धार्मिक वीर संतान होती है। अभिमन्युने गर्भमें ही धनुर्विद्याको पा लिया था। माता-पिताका पारस्परिक सदाचार समान भावसे विधेय है।

स्त्रीका तीसरा धर्म—सन्तान होनेपर वह माता धात्री बनती है। उस समय उसपर पुत्रके लालनपालन, सदाचारी बनानेका दायित्व है।

उसे माताकी दया, मातृभावसे रहन-सहन कर सबको शान्ति देनेका काम है। स्त्री और पुरुषके दाम्पत्त्य सम्मेलनका वैज्ञानिक नियम जैसा भारतवर्षमें था, वैसा संसारमें इसके अनुकरणके सिवाय अन्यत्र न था। इस विज्ञानसे उनका मेल करते थे। स्त्रीको सोम-कला पुरुषको रई तेजकला देखकर उनके साम्यको मिलाते थे, जिससे जीवन पर्यन्त ही नहीं, वल्कि जन्म जन्मान्तरमें भी उनका संयोग उसी स्त्रीसे उस पुरुषका बनता था। इसीपर यह कहा था:—

"पूर्वदत्ता तु या नारि अग्रे धावति धावति।"

पूर्वजन्ममें जिस स्त्रीको बाम भागमें रखकर अपना ओज दिया, वही आगे जन्ममें उसे मिलती है। यहाँ ज्योतिश शास्त्रके अनुसार उनकी सभ्यता और काम शास्त्रसे भी देखते थे, इससे उन दोनोंका पारस्परिक ऐसा दृढ़ सम्बन्ध रहता था, जो कभी टूट नहीं सकता था, वल्कि कहीं तो एकके मृत हो जाने पर दूसरा भी मर जाता था। पति याने शक्तके न रहने पर उसकी शक्ति (स्त्री) भी नहीं रहती थी, जिसे सतीके नामसे कहते थे कि वह सती हो गई, अर्थात् देवीके स्वरूपमें बदल गई। यह सिद्धान्त "रई और सोमके ठीक-ठीक योग जाननेसे होता है" गृह सूत्रोंमें इसी आधार पर लिखा है:— "यवीयसी भार्या परिणयेत" यवीयसि अर्थात् तेजकी अपेक्षामें न्यून सोम और रयी अपेक्षाकृत है। एक स्त्री किसी पुरुषकी अपेक्षामें बलवती है, पर दूसरी अपेक्षामें वह दुर्बला। इस बला-बलको ठीक-ठीक देखना संयोग विज्ञान है प्रायः स्त्रीका तापमान

(temperature) पुरुषकी अपेक्षा साम्य (Normal) दशासे कम रहना चाहिये। जहाँ पुरुषकी अपेक्षा स्त्री बलवती ओजमें होती है, उस गृहस्थका रहना भयप्रद है। नीतिकार कहता है:—

"अबला पथ प्रबला शिशिरविनीता निरक्षरो मन्त्रि नहि नहि तत्र धनाशा···· आदि।"

जहां पुरुषसे स्त्रीका बल विशेष है, वहां धनाशा तो कहां, जीवनकी आशा भी उस कुटम्बमें दुःष्प्राप्य है। सामुद्रिक शास्त्रका कथन है कि पुरुष आकृतिकी स्त्री और स्त्री आकृतिका पुरुष दुर्भाग्य और भयानक होते हैं। स्त्रीमें सोमकला होनेसे शान्ति, लज्जा, श्रद्धा प्रधान सम्पत्तियाँ हैं। जहाँ स्त्रियोंको देवीका स्वरूप कहा है, वहां यह भी दिखाया है। "यादेवि सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः" लज्जा रूपिणी स्त्रियोंको देवी रूपसे नमस्कार किया है। नीतिकारका कथन है:—

"सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जाश्च कुलांगना।"

वेश्याका भूषण निर्लज्जता है। कुलवती स्त्रीका भूषण लज्जा है। इससे यह नहीं समझना कि समय आनेपर वह रणांगणा या पापी या या आततायी नाश करनेमें लज्जामुखी रहे। जिस देवीकी उपमा हम दे रहे हैं, वही शुंभ-निशुंभ आदि दुष्टोंसे वध करनेमें बड़े पराक्रम का अवलम्बन कर रणांगणमें रण चण्डीके रूपमें उसने क्रीड़ा की, पर उस अवस्थामें उसे देवताओंने कहा है कि मातृभावसे स्त्री

शौर्यको अवश्य कर दिखावे। स्त्री-भाव गृहस्थाश्रममें प्रधानतया है। गृहस्थ धर्मसे लज्जा, श्रद्धा, अतिथि सत्कार, पति पुत्रका श्रेय, श्वसुर-सासकी पूजा अपने उपार्जित धनसे पहले सास-स्वसुरकी सेवा, छोटे देवरकी शिक्षा पालन आदि कर्म उसके सतीत्व धर्मके अंग हैं। भारतवर्षका जीवन यह नहीं है कि अपना उपार्जित धन अपने भोग-विलाश मात्रके लिये है, बल्कि मातापिता, भाई, बालक, दुर्बलोंका भी उसमें अंश समझे। शास्त्रने कहा है :—

"अर्थ स केवलं भुंक्तेयः पंचन्यात्म कारणम्।"

जो अपने उपार्जित धनसे स्वयं ही अकेला भोग करता है, वह पाप-पुञ्जको खाता है। जबतक अपने अन्य मातापिता आदि या अतिथी आदिको पहले न दे देवे, गृहस्थाश्रमकी जैसी महिमा है, वैसी निन्दा भी है। जो गृहस्थ आश्रममें नित्य अग्निहोत्र, देवता, पितर, अभ्यागत, अनाथों, असहायोंको देकर स्वयं भोजन करता है, वह पुण्य धन गृहस्थी है। जो केवल अपने आप ही भोग करते हैं, वे नरकगामी होते हैं। याज्ञवल्क्यने कहा है :—

"न्यायागतधनं तत्वं ज्ञाननिष्ठोतिथिप्रिय,
श्राद्धात् सत्य वादिच गृहस्थोपि विमुच्यते।"

न्यायसे जो धनोपार्जन करता है और जिसकी निष्ठा ज्ञानमें अर्थात् ब्रह्मविद्यामें हो तथा नित्य अतिथिका पूजन करनेवाला है, वह गृहस्थी भी जन्म-मरणके बंधनसे छुटकारा पा सकता है।

यद्यपि स्त्री-पुरुषको स्त्री धर्मसे रक्षा करनेका विशेष कर्तव्य है। उसकी रक्षा पुरुषके अपने आचरण और चरित्र सुधारने पर निर्भर है, क्योंकि "अश्व शास्त्रं वीणा वाणा नरश्च नारिश्च प्राप्य पुरुष विशेषं भवन्ति योग्याश्च" घोड़ा, निनार, स्त्री आदि जैसे पुरुषके साथ रहती है, वैसे स्वभावको धारण कर लेती है ॥

'स्त्रियाचरित्रं पुरुषस्यय भाग्यम्'

स्वच्छन्दगामिनी उग्र स्वभाववाली स्त्रीका तत्काल त्यागकर देना चाहिये। स्त्री देवी रूपी है, पर दुष्ट संगतिसे वे कहीं पाप रूपा भी हो जाती है, इसलिए नीतिकारने—

कहा है कि स्त्रियोंके चरित्रको समझना साधारण बुद्धिका काम नहीं, अन्य पुत्रियोंको पिताके घरसे ही सत् शिक्षासे पूर्ण होकर लज्जा मधुर भाषण, निष्छल स्वभावका विकाश करना परम आवश्यक है, उनको विवाहके अनन्तर अपनी दैनिक चाल ऐसी बनानी चाहिये, जो शास्त्र समान हो जिसमें उनका चरित्र बढ़े, दुष्ट संगतिसे बचे। स्त्रीको क्षेत्र प्रधान कर्तव्य होनेसे घरकी वस्तुओंकी देख भाल, देवता पूजन सास श्वसुरकी सेवा भोजन बनाना, शिल्प कार्य दैनिक हिसाब अपने हाथमें करना चाहिए, अवशेष समयमें चरित्र-वालक बहनोंसे मिलना, उत्तम शास्त्रको पढ़ना, जैसे गीता, रामायण आदि है। सीता, उर्मिला, सावित्रीका और देशकी बहन वीर माता रानी भक्ता मीरा आदियोंके आदर्श पथ पर अपना जीवन चलाना वर्तमान कालके जो अनुभव हैं, उनपर विचार कर चलना चाहिए।

स्त्रियोंमें सोम भावकी प्रधानता है। सोम और रै तलआये क्षिक है, तात्पर्य है कि स्त्री एक पुरुषके सम्बन्धमें रै हो।

महर्षियोंने स्त्रियोंको क्षेत्र किम्बा भूमि भी कहा है। और पुरुषको क्षेत्रज्ञ किम्बा बीज प्रदान कहा जाता है। साधारणता यह प्रत्यक्ष प्रमाण है, कि क्षेत्र जितना सुंस्कृत तथा निरन्तर सुरक्षित रहेगा, उतनी ही उसमें अच्छी फसल पैदा होगी, और अनियमित प्रकारसे व्यवहारमें लाई हुई सर्वोत्तम भूमिमें भी अच्छी फसल नहीं हो सकती।

उपरोक्त कथनानुसार स्त्रियोंको भी स्वास्थ्य सम्बन्धी तथा गर्भिणीवस्था, प्रसूतावस्था तथा उसके अनन्तर भी २ या ३ मास तक नियमित आहार विहार सेवन करनेसे उनका स्वयं भी स्वास्थ्य ठीक रहता है, और परिणाम स्वरूप उनकी सन्तान भी निरुग्ण, मेधावी तथा दीर्घजीवी होती है।

अतएव कतिपय नियम इस सम्बन्धमें लिखे जाते हैं, जिनका पालन करनेसे वीज लाभ हो सकता है।

(१) जबसे गर्भ धारण होना प्रतीत हो, उस समय तक, जब तक बालकका जन्म न हो तब तक इच्छानुसार पथ्य भोजन तथा नियमित बिहार व परिश्रम अपने शारीरिक बल तथा देशकी प्रथानुसार करना चाहिये।

(२) यदि गर्भावस्थामें कोई उपद्रव तथा व्याधि हो तो वैद्यक शास्त्रानुसार जिसका कि विस्तृत वर्णन आयुर्वेद ग्रन्थोंमें है, किसी सद्वैद्यके तत्वानुधानमें करना चाहिये।

(३) प्रसूतिकावस्थामें भी किसी चतुर दाई और योग्य चिकित्सकके परामर्श द्वारा सम्पूर्ण कार्य्य करना चाहिये। ऐसी वस्थामें गड़बड़ी हो जानेसे बड़े-बड़े भयंकर रोग हो जाया करते हैं।

किसी प्रकारकी व्याधि ज्वर अतिसार प्रभृति रोग उत्पन्न हो जानेसे शीघ्रताशीघ्र उसके प्रतिकार करनेका यत्न करना चाहिये। गर्भावस्थामें मकरध्वज, प्रतापलंकेश्वर लक्ष्मी विलाश दशमूलका क्वाथ अर्क वा अरिष्टके सेवनसे विशेष लाभ देखा गया है।

(४) प्रसूतिकावस्थामें पथ्य तथा पुष्टिकर भोजन अपना अग्नि बल और देश काल विचारकर करना चाहिये।

नवजात बालककी निरन्तर रक्षा करना माताओंका परम कर्तव्य है, शुद्ध साफ कपड़े ऋतुके अनुसार स्नान अभ्यङ्ग दुग्धपान इत्यादि सम्यक रूपसे करना चाहिये।

थोड़ेसे घरेलू नुस्खे हैं, जिनका प्रयोग करनेसे शिशुका स्वास्थ्य ठीक रहता है, तथा बहुत सी व्याधियां अल्प कालमें ही शान्त हो जाती हैं।

(१) चातुर्भद्र-पीपर-काकरासिंघी-अतीश और नागरमोथा सम भाग लेकर चूर्ण करके बालकको अवस्थानुसार १ से ४ रत्ती तक मधु या जलमें घोलकर देनेसे बड़ा लाभ होगा।

विशेषतः ज्वर-अतिसार कास, श्वास इत्यादिमें अधिक लाभ होगा।

(२) भुना हुआ सोहागा आधी रत्तीके प्रमाणसे बालकके पीने-

वाले दुग्ध किम्बा मधुके साथ देनेसे पेटके अनेक रोग शान्त हो जाते हैं।

(३) कब्ज या उदरमें पीड़ा इत्यादि होनेसे २० से ३० बून्द तक एरण्डतैल (Refine Castar Oil) का प्रयोग लाभकारी होगा।

(४) इसके अतिरिक्त जन्मघुटी, अजवाईन, पानकी घुटी इत्यादिका साधारण प्रयोग बहुत उपकार करता है।

(५) बालकको माताका दूध ही परम हितकर है, दुर्भाग्यवश यदि माताका दूध न हो या दूषित हो तो गौका दूध जल मिलाकर गर्म करके किम्बा बकरीका दुग्ध पकाकर थोड़ा चूनेका जल मिलाकर देना लाभकारी होगा।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि माताको गर्भाधानसे लेकर जब तक बालक तीन वर्षका न हो जाय, स्वयं पथ्यसे निरंतर रहना चाहिये, तथा शिशुकी भी देख-भाल सम्यक प्रकारसे करनी चाहिये। पथ्य और ब्रह्मचर्य्यसे रहनेका ऐसा अच्छा प्रभाव माताके शरीर पर होता है, कि जिसका वर्णन करना कठिन है, फलतः उसका बालक दीर्घ-जीवी हृष्ट-पुष्ट, मेधावी और पुरुषार्थी होता है।

बालकको चक्षुविकार और दन्तोद्भेद सम्बन्धी रोग प्रायः हुआ करते हैं, उसके निवाणार्थ नीचे लिखी औषध लाभदायक हो सकती है :—

तुलसीके ५ पत्तेका रस, आधो कालो मिर्च दोनोंको पीस कर थोड़ा सा मधु मिलाकर बच्चेके जन्मसे लेकर कमसे कम तीन सालतक प्रति दिन प्रातः एक बार चटानेसे बहुत लाभकारी होगा।

आचारप्रकणरम्

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ।
तस्मादस्मिन्सदायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ॥१॥
आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत् ॥२॥
एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् ।
सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ॥३॥
श्रुतिस्मृत्यूदितं सम्यङ् निबद्धं स्वेषु कर्मसु ।

वेदोक्त तथा स्मृत्युक्त आचार ही परमधर्म कहा है, इस कारण नित्य उस धर्ममें तत्पर ब्राह्मण आत्मवेत्ता होता है ॥ १ ॥

आचारहीन ब्राह्मण वेदके फलको नहीं पाता, आचारसे युक्त ब्राह्मण सम्पूर्ण वेदके फलका भागी होता है ॥ २ ॥

मुनियोंने आचारसे धर्मकी गतिको देखकर सम्पूर्ण तपके मूल आचारका ग्रहण किया ॥ ३ ॥

अपने कर्मोंमें अच्छी तरह बँधे हुए वेद तथा स्मृतिमें कहे हुए

धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ॥ ४ ॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥५॥
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥६॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥७॥
शतायूरुक्तः पुरुषः शतवीर्यश्च जायते ।

धर्मके मूल सदाचारका निरालस्यसे सेवन करे ॥ ४ ॥

मनुष्य आचारसे आयुको पाता है, आचारसे इच्छानुकूल संतानको पाता है, और आचारसे ही अविनाशी (नित्य) धनको पाता है, और दुराचारको आचार ही नाश करता है ॥ ५ ॥

दुराचारी मनुष्य निश्चय ही संसारमें निन्दनीय दुःखका भागी होता हुआ व्याधिसे युक्त तथा अलपवायु होता है ॥ ६ ॥

जो मनुष्य सब लक्षणोंसे हीन होकर भी सदाचारी तथा विश्वासी व अनीर्षी हो वह सौ वर्ष जीता रहता है ॥ ७ ॥

हे पितामह ! मनुष्यको सौ वर्ष जीनेवाला तथा शतवीर्यवाला

कस्मान्म्रियन्ते पुरुषा बाला अपि पितामह ॥८॥
आयुष्मान्केन भवति अल्पायुर्वाऽपि मानवः ।
केन वा लभते कीर्तिं केन वा लभते श्रियम् ॥९॥
तपसा ब्रह्मचर्येण जपहोमैस्तथौषधैः ।
कर्मणा मनसा वाचा तन्मे ब्रूहि मितामह ॥१०॥
अत्र तेऽहं प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वमनुपृच्छसि ।
अल्पायुर्येन भवति दीर्घायुर्वापि मानवः ॥११॥
येन वा लभते कीर्तिं येन वा लभते श्रियम् ।

कहा है, तो वे मनुष्य बालक ही कैसे मर जाते हैं ॥ ८ ॥

मनुष्य शतायु कैसे होता है तथा अल्पायु कैसे होता है, किस तरह कीर्तिको पाता और लक्ष्मीको किस तरह पाता है ? ॥९॥

हे मितामह ! तप, ब्रह्मचर्य, जप, होम, व औषधि तथा कर्म व मन, वाणी इनमेंसे किससे मनुष्य दीर्घायु होता है, वह मुझसे कहो ॥१०॥

भीष्मने कहा इस विषयमें जो तू मुझसे पूछता है; वह जिससे मनुष्य अल्पायु तथा दीर्घायु होता है, मैं तुझसे कहता हूं ॥११॥

अथवा जिससे कीर्तिको पाता है तथा लक्ष्मीको पाता है और

यथा वर्तयन्पुरुषः श्रेयसा संप्रयुज्यते ॥१२॥

आचाराल्लभते चायुराचाराल्लभते श्रियम् ।
आचाराल्लभते कीर्तिं पुरुषः प्रेत्य चेह च ॥१३॥

दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत् ।
यस्मात्त्रसन्ति भूतानि तथा परिभवन्ति च ॥१४॥

तस्मात्कुर्यादिहाचारं यदीच्छेद्भूतिमात्मनः॥१५॥

अपि पापशरीरस्य आचारो हन्त्यलक्षणम्
आचारलक्षणो धर्मः सन्तःसत्कर्मलक्षणाः॥१६॥

जिसके करनेसे मनुष्य कल्याणको पाता है ॥१२॥

मनुष्य इस लोक तथा परलोकमें आचारसे ही आयु और आचारसे ही लक्ष्मी तथा कीर्तिको पाता है ॥१३॥

दुराचारी मनुष्य इस संसारमें पूर्ण आयुको नहीं प्राप्त होता और उससे सब जीव डरते तथा तिरष्कृत होते हैं ॥१४॥

इसलिए ऐश्वर्य चाहनेवालोंको चाहिए कि वे आचारवान् बनें ॥१५॥

चाहे सम्पूर्ण शरीर पापका ही पुञ्ज क्यों न हो; आचारसे सब दोष दूर हो जाते हैं। धर्मका लक्षण आचार और सत्कर्म सज्जनोंका लक्षण है ॥१६॥

साधुता च यथावृत्तमेतदाचारलक्षणम् ॥१७॥
ये नास्तिका निष्क्रियाचाश्च गुरुशास्त्राभिलंघिनः ।
अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः ॥१८॥
विशीलभिन्नमर्यादा नित्यसंकीर्णमैथुनाः ।
अल्पायुषो भवन्तीह नरा निरयगामिनः ॥१९॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि समुदाचारवान्नरः ।
श्रद्धधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥२०॥

सज्जन पुरुषोंका जो व्यवहार है, उसीको आचार कहते हैं ॥१७॥

जो नास्तिक, कर्मरहित तथा गुरु व शास्त्रका उल्लंघन करने वाले, अधर्म करने वाले व दुराचारी होते हैं, वे क्षीण आयु होते हैं ॥१८॥

जो मनुष्य दुष्ट स्वभाव वाले, मर्यादाको उल्लंघन करनेवाले तथा नित्य अति मैथुन करनेवाले होते हैं, वे इस संसारमें अल्पायु तथा नरकगामी होते हैं ॥१९॥

सब लक्षणोंसे हीन भी सदाचारवाला, विश्वासी तथा ईर्ष्या न करनेवाला मनुष्य सौ वर्ष जीता है ॥२०॥

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
उत्थायाचम्य तिष्ठेत पूर्वां सन्ध्यां कृताञ्जलिः॥२१॥
एवमेवापरां सन्ध्या समुपासीत वाग्यतः ।
नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं नास्तं यान्तं कदाचन॥
नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम्॥२२॥
ऋषयो नित्यसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुवन् ।
तस्मात्तिष्ठेत्सदा पूर्वां पश्चिमां चैव वाग्यतः॥२३॥
ये न पूर्वामुपासन्ते द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम् ।

ब्राह्ममुहूर्तमें जागे और पश्चात् धर्म और अर्थकी चिन्ता करे फिर उठ आचमन कर हाथ जोड़ प्रातःकालिक सन्ध्याकी उपासना करे ॥२१॥

इसी प्रकार मौन भावसे सायंकालिक संध्याकी भी उपासना करे और उदय तथा अस्त होते हुए तथा जलस्थ सूर्य प्रतिबिम्बको व मध्य आकाशमें स्थित हुए सूर्यको कदापि न देखे ॥२२॥

ऋषि लोगोंने नित्य संध्याकी उपासना करके दीर्घ आयु प्राप्त की। इसलिए नित्य ही प्रातः तथा सायंकाल ध्यानपूर्वक सन्ध्याकी उपासना करे ॥२३॥

जो ब्राह्मण प्रातःकाल तथा सायंकालकी सन्ध्याकी उपासना

सर्वांस्तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि
धारयेत् ॥२४॥

परदारा न गन्तव्याः सर्ववर्णेषु कर्हिचित् ।
नहीदृशमनायुष्य लोके किञ्चन विद्यते ॥२५॥
यादृश पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥२६॥
यावन्तो रोमकूपाःस्युः स्त्रीणां गात्रेषुनिर्मिताः ।
तावद्वर्षसहस्राणि नरकं पर्युपासते ॥२७॥

नहीं करते, उनको धार्मिक राजा शूद्र-कर्मों में नियुक्त करें अर्थात् जो व्यक्ति ईश्वरकी उपासना नित्य न करे, वह राजाको कभी भी हित-कर नहीं है ॥२४॥

कभी किसी वर्णकी क्यों न हो, किन्तु पर-स्त्रीगमन न करे। क्योंकि संसारमें पर-स्त्रीगमनसे अधिक अनायुष्य कुछ नहीं है ॥२५॥

जैसा पाप मनुष्यको इस संसारमें पर-स्त्रीगमन करनेसे होता है ॥२६॥

जितने स्त्रियोंके शरीरमें बालोंके कूप हैं, उतने वर्ष पर-स्त्रीगामी मनुष्य नरकमें रहते हैं ॥२७॥

प्रसाधनं च केशानां मञ्जनं दन्तधावनम् ।
पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च पूजनम् ॥२८॥
नाज्ञातैः सह गच्छेत नैको न वृषलैः सह ।
उपानहौ च वस्त्रं च धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥२६॥
पन्था देयो ब्राह्मणाय गोभ्यो राजभ्य एव च ।
वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च ॥३०॥

नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी न हीनतः
परमभ्याददीत ।

बाल बनाना, दन्तधावन (दांतोंका धोना) तथा देवताओंका पूजन पूर्वाह्ण (दिनके पहले भाग) में ही करना चाहिए ॥२८॥

मूर्खके साथ न जाय न अकेला वृषलोंके साथ न जाय, दूसरोंके धारण किए हुए जूते तथा वस्त्र न धारण करे। क्योंकि बहुतसी बिमारियाँ ऐसी हैं, जो स्पर्शास्पर्शसे फैलती हैं ॥२६॥

ब्राह्मण, गो, राजा, वृद्ध, भारसे पीड़ित मनुष्य, गर्भिणी तथा दुर्बल इनके लिये मार्ग देना उचित है ॥३०॥

दूसरेको पीड़ित करनेवाला न हो, कटु वाक्य न कहे तथा हीन

यथास्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेदुशतीं पापलोक्याम् ॥३१॥

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि । परस्य वा मर्मसु निष्पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत्परेषु ॥३२॥

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तया विद्धं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥३३॥

से उत्कृष्ट वस्तुको न लेवे तथा जिस वाणीसे दूसरेका मन उद्विग्न हो, उस पापयुक्त वाणीको न कहे ॥३१॥

वाणीरूपी वाण मुखसे छूटते ही रहते हैं, जिनसे बेधा हुआ मनुष्य दिन रात सोचता ही रहता है। इसलिए जो वाणीरूपी बाण दूसरोंके मनको भेदन करते हैं, उन बाणोंको पण्डित दूसरोंके ऊपर मत फेंके ॥३२॥

बाणोंसे बेधा हुआ घाव पूरित हो जाता है, तैसे ही कुल्हाड़ी से कटा हुआ वन भी फिर बृक्षोंसे पूरित हो जाता है, किन्तु दुष्ट वाणीसे बिधा हुआ मनका घाव कदापि पूर्ण नहीं होता ॥ इसलिए कभी भी कठोर शब्द दूसरेको न कहे चाहे वह भृत्य, शिष्य ही क्यों न हो ॥३३॥

कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः ।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ३४॥
हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् विगर्हितान्।
रूपद्रविणहीनांश्च सत्त्वहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥३५॥
नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां न कुत्सनम् ।
द्वेषदम्भाभिमानं च तैक्ष्ण्यं परिवर्जयेत् ॥३६॥
परस्य दण्डं नोद्यच्छेत् क्रुद्धो नैनं निपातयेत् ।

चाकू, बाणादि शस्त्र शरीरसे निकाले जा सकते हैं, परन्तु कटु-वाक्यरूपी बाण किसी प्रकार भी निकाले नहीं जा सकते, क्योंकि वे हृदयमें चुभ जाते हैं ॥३४॥

हीन व अधिक अङ्गवाले तथा दीन, विद्याहीन, निन्दित, रूप, धन, बल इनसे हीन मनुष्योंका तिरस्कार न करे ॥३५॥

नास्तिकता, वेदनिन्दा, देवतोंकी निन्दा द्वेष, दम्भ तथा अहंकार तीक्ष्णता इनको छोड़ देना चाहिए ॥३६॥

दूसरेके लिए दंड न उठावे तथा कुपित होकर उसको न मारे, केवल पुत्र व शिष्यको विद्या पढ़ाने व सन्मार्ग पर लगानेके निमित्त जब साम उपायसे काम न चले तब ताड़न कर सकता है, अन्यथा

अन्यत्रपुत्राच्छिष्याच्चशिक्षार्थं ताडनंस्मृतम् ॥३७॥
कृत्वा मूत्रपुरीषे तु रथ्यामाक्राम्य वा पुनः ।
पादप्रक्षालनं कुर्यात्स्वाध्याये भोजने तथा ॥३८॥
नित्यमग्निं परिचरेद्भिक्षां दद्याच्च नित्यदा ।
वाग्यतो दन्तकाष्ठं च नित्यमेव समाचरेत् ॥३९॥
न चाभ्युदितशायी स्यात्प्रायश्चित्ती तथा भवेत् ।
मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत् ॥
आचार्यमथवाऽप्यन्यं तथायुर्विन्दते महत् ॥४०॥

ताड़न करना नहीं चाहिए ॥३७॥

मार्ग छोड़कर मूत्र, पुरीषोत्सर्जन करना चाहिए तथा वेदपाठ व भोजन करनेके पूर्व पैर धोने चाहिएं ॥३८॥

नित्य अग्निकी सेवा करे तथा याचकोंको नित्य भिक्षा देवे और मौन होकर नित्य ही दन्तकाष्ठ करे अर्थात् दातूनसे दांतोंको साफ करे ॥३९॥

सूर्योदयके पश्चात् शयन न करे, क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्य प्रायश्चित्तभागी होता है, और उठकर प्रथम माता, पिता व गुरु तथा अन्य पूज्य लोगोंको प्रणाम करे, ऐसा करनेसे मनुष्य बड़ी आयुको पाता है ॥४०॥

वर्जयेद्दन्तकाष्ठानि वर्जनीयानि नित्यशः ।
भक्षयेच्छास्त्रदृष्टानि पर्वस्वपि विवर्जयेत् ॥४१॥
उदक्शिरा न स्वपेत तथा प्रत्यक्शिरा न च ।
प्राक्शिरास्तु शयेद्विद्वानथवा दक्षिणाशिरः ॥४२॥
न चैवार्द्राणि वासांसि नित्यं सेवेत मानवः ।
उदक्यया च संभाषां न कुर्वीत कदाचन ॥४३॥
नोत्सृजेत पुरीषं च क्षेत्रे ग्रामस्य चान्तिके ।

नित्य ही वर्जित दन्तकाष्ठोंको वर्जित करे और शास्त्रोक्त दन्त-काष्ठोंसे दातून करे, किन्तु इनको पर्वकाल (अमावास्यादि) में वर्जित करे ॥४१॥

उत्तर तथा पश्चिम दिशाको शिर करके न सोवे, विद्वान् मनुष्य पूर्व तथा दक्षिण दिशाको शिर करके शयन करे ॥४२॥

मनुष्य भीगे वस्त्रोंका सेवन न करे और उदकी (रजस्वला) स्त्रीसे कभी संभाषण न करे, इससे प्रभाव (तेज) का नाश होता है ॥४३॥

खेत तथा गांवके निकट पुरीषोत्सर्जन न करे और जलमें भी

उभे मूत्रपुरीषे तु नाप्सु कुर्यात्कदाचन ॥४४॥
नाधितिष्ठेत्तुषं जातु केशे भस्म कपालिका ।
अन्यस्य चाप्यवस्नातं दूरतः परिवर्जयेत् ॥४५॥
निषण्णश्चापि खादेच्च न तु गच्छन् कदाचन ।
मूत्रं नोत्तिष्ठता कार्यं न भस्मनि न गोव्रजे ॥४६॥
आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो वर्षाणां जीवते शतम् ॥४७॥
ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ।

मूत्र व पुरीषोत्सर्जन कभी न करना चाहिए ॥४४॥

बाल, भस्म, कपाल आदिको न छुए, दूसरेके स्नान किये हुए जलसे स्नान न करे ॥४५॥

बैठकर खाना चाहिये, चलते हुए कदापि न खाना चाहिए और खड़ा होकर तथा भस्म व गोठमें मूत्रोत्सर्जन न करना चाहिए ॥४६॥

भीगे पैर खाना चाहिए और बिना भीगे पैर भोजनको नहीं बैठना चाहिए, भीगे पैर भोजन करनेवाला सौ वर्ष जीता रहता है ॥४७॥

अपनेसे श्रेष्ठ शक्तिवाले पुरुषके सामने आनेसे प्राणवायुकी ऊपरकी ओर स्वभावतः गति होती है, ऊपरकी ओर जाता है, उस

प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्ताम् प्रतिपादयेत् ४८॥
अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वयम् ।
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽनियात् ॥४६॥
न चाशीतासनेऽभिन्ने भिन्नं कांस्यं च वर्जयेत् ।
नैकवस्त्रेण भोक्तव्यं न नग्नः स्नातुमर्हति ॥५०॥
स्वप्तव्यं नैव नग्नेन न चोच्छिष्टोपि संविशेत् ।
उच्छिष्टो न स्पृशेच्छीर्षं सर्वप्राणास्तदाश्रयाः ॥५१॥

प्राणवायुको फिर यथास्थान लानेका यही एक उपाय है कि उस श्रेष्ठ पुरुषको प्रणाम करे और उठकर उसका स्वागत करे ॥४८॥

वृद्धोंको प्रणाम करना चाहिए और उनको स्वयं आसन देना तथा हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करनी चाहिए और यदि वह जावें तो उनके पीछे चलना चाहिए, अपनेसे गुण, कर्म, जाति, अवस्थामें श्रेष्ठका सत्कार करे ॥४६॥

पृथक्-पृथक् आसन पर बैठकर पृथक्-पृथक् पात्रोंमें भोजन करे, एक वस्त्रसे भोजन न करे और नग्न स्नान भी न करे ॥५०॥

नंगा होकर शयन न करे (कुछ वस्त्र बदन पर रखे) जूठे मुंह भी भोजन न करे, जूठे हाथ कभी शिर पर न लगावे, क्योंकि शिर सम्पूर्ण प्राणोंका आश्रय है ॥५१॥

केशग्रहं प्रहारांश्च शिरस्येतान् विवर्जयेत् ।
न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेतात्मनः शिरः ५२॥
न चाभीक्ष्णं शिरः स्नायात्तथास्यायुर्न रिष्यते।
नाध्यापयेत्तथोच्छिष्टो नाधीयीत कदाचन ॥५३॥
वाते च पूतिगन्धे च मनसापि न चिन्तयेत् ।
अत्र गाथा यमोद्गीता कीर्त्तयन्ति पुराविदः॥५४॥
आयुरस्यनिकृन्तामि प्रजास्तस्याददे तथा ।
य उच्छिष्टः प्रद्वति स्वाध्यायं चाधिगच्छति ॥५५॥
यश्चानध्यायकालेपि मोहादभ्यसति द्विजः ।
तस्य वेदः प्रणश्येत आयुश्च परिहीयते॥
तस्माद्युक्तो ह्यनध्याये नाधीयीत कदाचन ॥५६॥

केशोंको पकड़ना या केशोंको सुखानेके निमित्त हाथसे झाड़ना न चाहिए और दोनों हाथोंसे शिरको कभी न खुजलावे ॥५२॥

दिनभरमें कई बार शिरसे स्नान न करे, बिना मुंह धोए न स्वयं पढ़े, न दूसरेको पढ़ावे ॥५३॥

अनध्याय समयमें तथा बिना शुद्ध हुए जो वेद पढ़ता या पढ़ाता है, उसके पढ़े हुए सब वेद नष्ट हो जाते हैं, इस कारण अनाध्यायमें वेद कभी नहीं पढ़ना चाहिए ॥५४-५६॥

प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिगां च प्रतिद्विजान् ।
ये मेहन्ति च पन्थानं ते भवन्ति गतायुषः ॥५७॥
संमान्यो हि प्रसाद्यश्च गुरुः क्रुद्धो युधिष्ठिर ।
सम्यङ्मिथ्याप्रवृत्त्याऽपि वर्तितव्यं गुराविह ॥
गुरुनिन्दा दहत्यायुर्मनुष्याणां न संशयः ॥५८॥
दूरादावसथान् मूत्रं दूरात्पादावसेवनम् ।
उच्छिष्टोत्सर्जनं चैव दूरे कार्यं हितैषिणा ॥५९॥
विपर्ययं न कुर्वीत वाससो बुद्धिमान्नरः ।
तथानान्यधृतं धार्यं न चापदशमेव च ॥६०॥

सूर्यके संमुख, अग्निके संमुख, गायके संमुख, द्विजातिके संमुख अथवा जो मार्गमें पेशाब (मूत्र) करते हैं, उनकी आयु कम हो जाती है ॥५७॥

गुरुके क्रुद्ध होने पर भी उनका सम्मान करना और नित्य प्रसन्न रखना चाहिये, गुरुसे कभी असत्य न बोले। गुरुकी निन्दा करनेसे मनुष्य अल्पायु होता है ॥५८॥

पैर धोना, मूत्रोत्सर्ग करना, जूठा फेंकना यह कर्म मकानसे पृथक् करने चाहिएं ॥५९॥

बुद्धिमान मनुष्यको दूसरेके धारण किए हुए वस्त्र नहीं पहरने चाहिएं, उलटे वस्त्र नहीं धारण करना चाहिए ॥६०॥

अन्यदेव भवेद्वासः शयनीये नरोत्तम ।
अन्यद्रथ्यासु देवानामर्चायामन्यदेव हि ॥६१॥
प्रियंगुचन्दनाभ्यां च बिल्वेन तगरेण च ।
पृथगेवानुलिम्पेत केशरेण सुबुद्धिमान् ॥६२॥
उपवासं च कुर्वीत स्नातः शुचिरलंकृतः ।
पर्वकालेषु सर्वेषु ब्रह्मचारी सदा भवेत् ॥६३॥
भूमौ सदैव नाश्नीयान्नानासीनो न शब्दवत् ।
तोयपूर्वं प्रदायान्नमतिथिभ्यो विशेषतः ॥६४॥

शयनके समय अलाहदा वस्त्र पहिरना चाहिए, भोजनके वक्त दूसरा, पूजाके समय दूसरा ही हो, कचहरीकी पोशाक अलाहदे हो, सर्वदा शयन पूजनादिमें एकही वस्त्र सर्वत्र न रक्खे, पृथक् पृथक् वस्त्र हों ॥६१॥

अच्छी सुगन्ध लगानेसे मन प्रसन्न रहता है ॥६२॥

पर्वकालमें हमेशः स्नान कर स्वच्छ-पवित्र वस्त्र, आभूषण धारण कर उपवास करे और ब्रह्मचर्यसे पवित्राचरण पूर्वक रहे ॥६३॥

जमीनमें बैठकर कभी भोजन न करे, कुछ आसन बिछाकर बैठे, बोलते हुए भोजन न करे और अतिथिको भोजन प्रसन्नतासे देवे अर्थात् अतिथिको देकर कृष्णार्पण कर आसनमें बैठ शान्त होकर भोजन करे ॥६४॥

तस्मात्भुञ्जीत मेधावी न चाप्यन्यमना नरः ।
समानमेकपंक्त्यो तु भोज्यमन्नं नरेश्वर॥ ६५ ॥
विषं हालाहलं भुंक्ते योऽप्रदाय सुहृज्जने ।
पानीयं पायसं सक्तून् दधिसर्पिमधून्यपि ॥ ६६॥
निरस्य शेषमेतेषां न प्रदेयन्तु कस्यचित्
भुञ्जानो मनुजव्याघ्र नैव शङ्कां समाचरेत्॥ ६७॥
परापवादं न ब्रूयान्नप्रियं च कदाचन ।
न मन्युः कश्चिदुत्पाद्यः पुरुषेण भवार्थिना॥ ६८॥

एकाग्र मन करके भोजन करे, एक पंक्तिमें बैठ कर खानेसे अन्न भोज्य रहता है ॥६५॥

जल, खीर, सक्तु, दही, दुग्ध, घी, मिठाई जो अकेले-अकेले खाता है, उसके लिये वह विषके बराबर है। इसलिये हमेशा अच्छे पदार्थ बाँट कर खाना चाहिये ॥६६॥

खानेसे बाकी बचा हुआ दूसरोंको नहीं देना और भोजन करते हुए चित्तमें कोई शंका नहीं करनी चाहिये ॥६७॥

दूसरेको अपवादसूचक वाक्य नहीं कहना, अप्रिय वाणी कदापि नहीं कहनी, ऐश्वर्यके चाहनेवाले पुरुषको दूसरे पर क्रोध नहीं करना चाहिए ॥६८॥

पतितैस्तुकथं नेच्छेत् दर्शन च विवर्जयेत् ।
संसर्गं न चगच्छेत तथायुर्विन्दते महत् ॥६६॥
न दिवा मैथुनं न गच्छेन्न कन्यां न च बन्धकीम्
न चास्नातां स्त्रियं गच्छेत्तथायुर्विन्दते महत् ॥७०॥
महात्मनोऽतिगुह्यानि न वक्तव्यानि कर्हिचित् ।
अगम्याश्च न गच्छेत् राज्ञः पत्नीं सखीं तथा ॥७१॥
विधवां बालवृद्धानां भृत्यानांच युधिष्ठिर ।

जो पतित मनुष्योंकी बात भी नहीं करता, उनका दर्शन और संसर्ग नहीं रखता वह पूर्ण आयु भोगता है ॥६६॥

जो दिनमें मैथुन नहीं करता है, कन्या तथा बन्धुकी स्त्री और बिना स्नान की हुई स्त्रीसे मैथुन नहीं करता, वह दीर्घायुको प्राप्त होता है ॥७०॥

अच्छे मनुष्योंके रहस्य प्रकट नहीं करना चाहिए, राजधर्म व्यवहारधर्मका यह परम मन्त्र है कि जबतक वह कार्य सिद्धावस्थामें न हो जाय, तबतक उस रहस्यको प्रकट न करे। रहस्य रक्षानीतिका प्रधान अंग है। अगम्य स्त्रियोंके साथ गमन करनेसे, राज-पत्नीके साथ गमन करनेसे गतायु होता है। इसलिये इनके साथ गमन न करे ॥७१॥

विधवा स्त्री, बाल स्त्री, वृद्धा स्त्री, नौकरकी स्त्री, जाति–

बंधूनां ब्राह्मणानां च तथा शरणिकस्यच ॥
संबन्धिनां च राजेन्द्र तथायुर्विन्दते महत् ॥७२॥
ब्राह्मणस्थपतिभ्यां च निर्मितं यन्निवेशनम् ।
तदा वसेत्सदा प्राज्ञो भवार्थी मनुजेश्वर ॥७३॥
सन्ध्यायां न स्वपेद्राजन् विद्यां न च समाचरेत् ।

बिरादरीकी स्त्री, ब्राह्मणकी स्त्री, शरणागत स्त्री, जो इनके साथ गमन (मैथुन) नहीं करता है, वह दीर्घजीवन प्राप्त करता है ॥ ७२ ॥

ब्राह्मणोंके निर्णय पर स्थपति (बढ़ैयों) ने जो मकान बनाया हो, उसमें रहनेसे मनुष्यका कल्याण होता है, इसका तात्पर्य यह है कि मकान मनुष्यको न केवल धूप, वर्षासे बचनेका आश्रय है; बल्कि जैसा उसके दैविक, याज्ञिक, आत्मिक साधन निमित्त है। जैसे शरीरका सम्बन्ध जीवसे, जीवका आत्मासे और पृथक्-पृथक् प्रकारके जीवोंको पृथक्-पृथक् शरीर है। हाथीके जीवको हाथीका शरीर, चींटीको चींटीका, इसी तरह मकानका सम्बन्ध मनुष्यसे है। हरएक मनुष्यके लिये अलग-अलग मकानकी आवश्यकता उसके धर्म, अर्थ साधनके लिये है। इसलिए ज्योतिषी ब्राह्मण और स्थपति इन दोनोंकी सम्मत्तिसे मकान बनावे न कि केवल राजके बनाये नकशेसे ही ॥७३॥

सन्ध्याकालमें शयन न करे और विद्या पढ़ना बन्द रक्खे, भोजन

नभुञ्जीत च मेधावी तथायुर्विन्दते महत् ॥७४॥
महाकुले प्रसूतां च प्रशस्तां लक्षणैस्तथा ।
वयस्थां च महाप्राज्ञ कन्यामावोढुमर्हति ॥७५॥
अपत्यमुत्पाद्यः ततः प्रतिष्ठाप्य कुलं ततः ।
पुत्राः प्रदेया ज्ञानेषु कुलधर्मेषु भारत ॥ ७६ ॥
कन्या चोत्पाद्य दातव्या कुलपुत्राय धीमते ।
पुत्रा निवेश्याश्च कुलावृत्या लभ्याश्च भारत।७७।
शिरः स्नातोऽथ कुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि वा ।

भी सन्ध्यामें न करे; इस तरह करनेसे मनुष्यको दीर्घायु प्राप्त होती है ॥७४॥

अच्छे खानदानमें उत्पन्न, शुभलक्षण सम्पन्न, ठीक अवस्था-वाली (न बहुत बड़ी न बहुत छोटी) कन्यासे विद्वानको विधि-पूर्वक विवाह करना चाहिए ॥७५॥

ऐसी स्त्रीसे अपनी कुलकी प्रतिष्ठाके लिये पुत्र उत्पन्न करे और उनको ज्ञानियोंके समीप अर्पण कर देवे ॥७६॥

कन्या उत्पन्न कर कुलवान्, बुद्धिमान्को देना चाहिए, पुत्रोंको उत्तम कुलमें रखकर सद्वृत्तिमें लगाना चाहिये ॥७७॥

देवार्चन, पितृपूजन, शिरसे स्नान करके और अपनी या

परिवादं न च ब्रूयात् परेषामात्मनस्तथा ॥
परिवादो ह्यधर्माय प्रोच्यते भरतर्षभ ॥ ७८ ॥

पात्रलक्षणसंयुक्ता प्रशस्ता पात्रलक्षणैः ।
मनोज्ञा दर्शनीया च तां भवान् वोढुमर्हसि॥७९॥

महाकुले निवेष्टव्यं सदृशे वा युधिष्ठिर ।
अवरापतिताश्चैव न ग्राह्या भूतिमिच्छता ॥८०॥

धनुर्वेदे च वेदे च यत्नः कार्यो नराधिप ।
अग्नीनुत्पाद्य यत्नेन क्रियाःशुचिहिताश्च याः८१

दूसरोंकी निन्दा कभी न करे क्योंकि निन्दा करनेसे महापाप होता है ॥ ७८ ॥

कन्या जो शुभ लक्षणोंसे युक्त हो, और प्रशंसाके योग्य जिसके लक्षण हों, मनोज्ञ, देखने योग्य हो, ऐसी कन्यासे विवाह करना उत्तम है ॥ ७९ ॥

हो सके तो अच्छे कुलमें जो अपनेसे भी श्रेष्ठ हो अथवा अपनी समानतामें विवाह करे, नीच कक्षामें कभी विवाह न करे ॥ ८० ॥

वेदमें और धनुर्वेदमें राजाको परिश्रम करना चाहिये, यत्नपूर्वक अग्निस्थापन पर वैदिक क्रिया करता जावे ॥ ८१ ॥

वेदे च ब्राह्मणैःप्रोक्तास्ताश्च सर्वाः समाचरेद् ॥८२॥
न चेर्ष्या स्त्रीषु कर्त्तव्या रक्ष्या दाराश्च सर्वशः ।
अनायुष्या भवेदीर्ष्या तस्माद्दिर्ष्यां विवर्जयेद् ८३॥
अनायुष्य दिवा स्वप्नं तथाभ्युजितशायिता ।
प्रगेनिशामाशु तथा ये चोच्छिष्टाःस्वपन्तिवै॥८४॥
परदार्य्यमनायुष्यं नापितोच्छिष्टता तथा ।
यत्नतो नैव कर्त्तव्यमभ्यासं चैव भारत ॥८५॥
सन्ध्यायां न च भुञ्जीत न स्नायेन्न पठेत्तथा ।

ब्राह्मणोंको वेद पढ़ना तथा और वर्णोंको उनसे पढ़कर आचरण करना चाहिये ॥ ८२ ॥

स्त्रियोंपर ईर्ष्या नहीं करनी, स्त्रियां सब तरह रक्षाके योग्य हैं। ईर्ष्या रखनेसे आयु क्षीण होती है, इसलिये ईर्ष्याका परित्याग करे ॥ ८३ ॥

दिनमें सोना, सूर्योदयमें शयन करना, जूठे मुँहसे सोना ये आयुके क्षीण करनेवाले हैं ॥ ८४ ॥

परस्त्रीगमन और नापितका जूठा इनका परित्याग सावधान होकर करना चाहिए, क्योंकि इनसे आयु कम होती है ॥ ८५ ॥

सन्ध्याकालमें भोजन तथा स्नान न करे और न पढ़े,

देवांश्च प्रणमेत्स्नातो गुरूंश्चाप्यभिवादयेत् ॥ ८६
अनिमन्त्रितो न गच्छेत् यज्ञं गच्छेच्च दर्शकः।
अनर्चिते ह्यनायुष्यं गमनं तत्र भारत ॥८७॥
न चैकेन परिव्रज्यं न गन्तव्यं तथा निशि।
अनागतायां सन्ध्यायामागत्य च गृहे वसेत् ॥ ८८॥
मातुः पितुर्गुरूणां च कार्यमेवानुशासनम् ।
हितं वाप्यहितं वापि न विचार्यं कथञ्चन ॥ ८९॥
हस्तिपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु चैव हि ।
यत्नवान् भव राजेन्द्र यत्नवान् सुखमेधते ॥९०॥

स्नान करके देवताओं और गुरुजनोंको प्रणाम करे ॥८६॥

बिना निमन्त्रणके किसीके कार्यमें न जावे, जो शुभ काममें जाकर सत्कार न किया जाय तो गतायु होता है ॥८७॥

अकेला परदेशमें भ्रमण न करे, रात्रिको न चले, सन्ध्याकालके पहिले ही रात्रीको निवास करना चाहिए ॥८८॥

माता, पिता, गुरुकी आज्ञा पर चलना चाहिए। उनकी आज्ञा के विरुद्ध अपनी बुद्धिको बड़ी न समझो ॥८९॥

हाथीकी सवारी, घोड़ेकी सवारी और गाड़ीमें चलते हुए गफलत से न रहे, बल्कि प्रतिक्षण सावधान रहना चाहिए। सावधानीसे सुख प्राप्त होता है ॥९०॥

अप्रधृष्यश्च शत्रूणां भृत्यानां स्वजनस्य च।
प्रजापालनयुक्तश्च न त्वतिं लभते क्वचित् ॥६१॥
युक्तिशास्त्रं च ते ज्ञेयं शब्दशास्त्रं च भारत।
गन्धर्वशात्रं च कला परिज्ञेया नराधिप ॥६२॥
पत्नी रजस्वला या च नाभिगच्छेन्न चाह्वयेत।

शत्रुओंसे न दबने वाला तथा भृत्य, स्वजन और प्रजाका पालन करने वाला कभी हानिको नहीं प्राप्त होता है। राज्य पालन करनेके लिए राजाको इतनी सामग्रियाँ इकट्ठी करनी चाहिए, न्यायशास्त्र, नीतिशास्त्र, व्यवहारतत्त्व, लोकमत, शब्दशास्त्र, शब्द-साहित्य, वेदान्त शास्त्र, गन्धर्वशास्त्र तथा ६४ कला, शस्त्रविद्या, खनिज विद्या, भू-विद्या, पाकविद्या; रचना विद्या इत्यादि। जो राजा इन सब बातोंको स्वयं नहीं जानता और केवल मन्त्रियोंके कथनमात्र पर ही राज्य चलाता है, उसकी राज्यलक्ष्मी राजाको छोड़ कर मन्त्रियोंके पास चली जाती है तथा राजा प्रजा-पीड़नके पाप भोग बन कर मुद्रा-राजसके इतिहासकी तरह राज्यभ्रष्ट तक हो जाता है। इसलिये राजाको सम्पूर्ण शास्त्रज्ञता और सब काम अपने हाथमें रखनेकी योग्यता प्राप्त कर लेनी चाहिए ॥६१—६२॥

रजस्वला स्त्रीके साथ न तो शयन करना और न उसको

स्नातां चतुर्थे दिवसे रात्रौ गच्छेद्विचक्षणः ॥६३

पञ्चमे दिवसे नारी षष्ठे इति पुमान् भवेत् ।
एतेन विधिना पत्नीमुपागच्छेत पण्डितः ॥६४॥

ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणि पूजनीयानि सर्वशः ।
यष्टव्यं च यथाशक्ति यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ॥६५॥

अत ऊर्ध्वमरण्यं च सेवितव्यं नराधिप ।
एष ते लक्षणोद्देश आयुष्याणां प्रकीर्तितः ॥६६॥

पुकारना, जब चतुर्थदिवसमें वह स्नान कर ले, तब वह पतिके साथ शयन करे ॥६३॥

पाँचवें दिन स्त्रीके साथ मैथुन करनेसे कन्या उत्पन्न होती है और छठवें दिन पुत्र, इसका विचार करना चाहिए ॥६४॥

भाई, बिरादर, इष्टमित्र सब पूजाके योग्य हैं। अपनी शक्तिके अनुसार यज्ञ, हवन अवश्य करना चाहिए ॥६५॥

जब पुत्र, पौत्र हो जायँ, तब गृहस्थीके काम समाप्त कर वानप्रस्थ आश्रमको सेवन करना चाहिए। जिनको इन्द्रियोंकी आशक्ति नहीं और जिनका जीवन विषयी, कामी, पापी नहीं है, वे सन्तानके सन्तान होते ही बनमें चले जाते हैं। तब गृहस्थीमें मरना नरक है ॥६६॥

आचारो भूतिजनन आचारः कीर्तिवर्धनः ।
आचाराद्वर्द्धते ह्यायुराचारो हन्त्यलक्षम् ॥९७॥
आगमानां हि सर्वेषामाचारः श्रेष्ठ उच्यते ।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विवर्धते ॥९८॥
एतदाशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत् ।
अनुकंप्य सर्ववर्णान् ब्रह्मणा समुदाहृतम् ॥९९॥

आचार ही ऐश्वर्यको देनेवाला है, आचार ही कीर्ति बढ़ानेवाला है, आचारसे आयु बढ़ती है और आचार ही से दुष्ट लक्षण दूर होते हैं ॥९७॥

जितने आगम (शास्त्र) हैं, उन सबमें आचार श्रेष्ठ है । आचार से धर्म उत्पन्न होता है और धर्मसे आयु बढ़ती है ॥९८॥

यह आयुका, स्वर्गका; कल्याणका देनेवाला सब वर्णको मानने योग्य कहा है ॥९९॥

शिष्टाचारः

स तु विप्रो महाप्राज्ञो धर्मव्याधमपृच्छत ।
शिष्टाचारं कथमहं विद्यामिति नरोत्तम ॥ १ ॥
एतदिच्छामि भद्रन्ते श्रोतुं धर्मभृतां वर ।
त्वत्तो महामते व्याध तद्ब्रवीहि यथातथम् ॥२॥
यज्ञो दानं तपो वेदाः सत्यं च द्विजसत्तम् ।
पञ्चैतानि पवित्राणि शिष्टाचारेषु नित्यदा॥३॥
कामक्रोधौ वशे कृत्वा दम्भं लोभमनार्जवम् ।
धर्मयित्येय मन्तुष्टास्ते शिष्टाः शिष्टसंमताः॥४॥

वह महाप्राज्ञ ब्राह्मण शिष्टाचारको धर्म व्याधसे पूछने लगा ॥१॥

हे धर्मके जाननेवालोमें श्रेष्ठ ! तुमसे वह विषय सुनना चाहता हूं, तुम ठीक-ठीक कहो ॥२॥

शिष्टाचारमें यज्ञ, दान, तप, वेद पढ़ना, सत्य बोलना यह पाँच मुख्य कर्त्तव्य हैं ॥३॥

काम, क्रोध, लोभ, घमण्ड इनको अपने वशमें करनेसे शिष्ट-सम्मत धर्म होता है ॥४॥

ये तु शिष्टाः सुनियताः श्रुतित्याग परायणाः।
धर्मपन्थानमारूढाः सत्यधर्मपरायणाः ॥ ५ ॥
नियच्छन्ति परां बुद्धिं शिष्टाचारान्विता जनः।
उपाध्यायमते युक्ताः स्थित्या धमार्थदर्शिनः॥६॥
नास्तिकान्भिन्नमर्यादान्क्रूरान्पापमतौ स्थितान् ।
त्यजतान्ध्यानमाश्रित्य धार्मिकानुपसेव्य च॥७॥
कामलोभग्रहाकीर्णां पञ्चेन्द्रियजलां नदीम् ।

जो श्रेष्ठ पुरुष वेदमें तत्पर, त्यागमें रत, सत्यमें लग कर धर्मके मार्ग पर चलते हैं ॥५॥

बुद्धिमान् शिष्टाचार सम्पन्न गुरुके अनुशासन पर युक्त होकर चलते हैं। वेदमें लिखा है—"न हि वा अपुरोहितस्य राज्ञः देवा अन्नमश्नन्ति" जिस राजाका (श्रोत्रिय वैदिक कर्मकाण्डका ज्ञाता) ब्रह्मनिष्ठ, आत्मज्ञानी, नीतिशास्त्रज्ञ गुरु न हो, तो उसका अन्न देवताको नहीं पहुंचता। इसलिए मूर्ख गुरु, अगुरु कभी न रहे ॥६॥

नास्तिक, मर्यादाभ्रष्ट, क्रूर, पापी इनको छोड़ कर धार्मिक पुरुषोंकी संगति करनी चाहिए ॥७॥

पंच इन्द्रियरूपी नदी जो काम, लोभरूपी ग्राह (नाकु) से

नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्म दुर्गाणि सन्तर॥८॥
अनाचारस्त्वधर्मेति एतच्छिष्टानुशासनम् ।
अक्रुध्यन्तोऽनसूयन्तो निरहङ्कारमत्सराः ॥९॥
क्षमासत्यार्जवं शौचं सतामाचारदर्शनम् ।
सर्वभूतदयावन्तो अहिंसारितः सदा ॥ १० ॥
विपाकमभिजानन्तस्ते शिष्टाः शिष्टासंमताः ।
न्यायोपेता गुणोपेताः सर्वलोकहितैषिणः ॥ ११ ॥

घिरी हुई है, उसकी धैर्यरूपी नावमें चढ़कर जन्मरूपी किलेसे तू पार हो ॥८॥

शिष्ट लोग अनाचारको अधर्म कहते हैं। क्रोधका त्याग, डाह का छोड़ना, अहंकार न करना, यह सब धर्म हैं ॥९॥

क्षमा, सत्य, सरल स्वभाव, पवित्रता, सब प्राणियों पर दया, किसीको न सताना, यह सज्जनोंका आचार है ॥१०॥

जिस कामके करनेको उद्यत हैं, उसके भले-बुरे नतीजेको जानने वाले, सर्वगुण सम्पन्न, न्यायमें तत्पर और लोक-हित करने वाले उत्तम धार्मिक कहे जाते हैं ॥११॥

अपनी शक्तिके अनुसार उपकार करना, लोकयात्राको देखते

अतिशक्त्या प्रयच्छति सन्तःसद्भिःसमागताः ।
लोकयात्रां च पश्यन्तो धर्ममात्महितानि च ॥१२॥
प्रज्ञाप्रासादमारुह्य मुच्यन्ते महतो भयात् ।
प्रेक्षयन्ते लोकवृत्तान विविधानिद्विजोत्तम ॥१३॥
कर्म च श्रुतसम्पन्नं सताम्मार्गमनुत्तमम् ।
शिष्टाचार निषेवन्ते नित्यं धर्ममनुव्रता ॥१४॥

हुए सज्जन आत्माके हितके लिये कार्य करते हैं ॥१२॥

ज्ञानकी भूमि पर बैठ कर बड़े भयसे छूट जाता है और संसार की सब वार्ता वहाँसे देखता रहता है ॥१३॥

वेद सम्पन्न कर्मको करे, यही सब मार्ग हैं। धर्म, व्रतपूर्वक शिष्टाचारका सेवन करे ॥१४॥

आर्षशिक्षासूत्राणि

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः ।
तज्जयः संपदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम् ।

सत्यं वद ॥ १ ॥ धर्मञ्चर ॥ २ ॥

स्वाध्यायान्मा प्रमद ॥ ३ ॥

आचार्याय प्रियन्धनमाहृत्य प्रजातन्तुमाव्य-
वच्छेत्सीत् ॥ ४ ॥

इस जगत्में प्रधानतया दो मार्ग हैं, आपत्ति और सम्पत्ति। इन्द्रियोंके वेगको संयम न करना ही आपत्तियोंका मार्ग है। इन्द्रियों का विजय करना ही सम्पत्तियोंका मार्ग है। अतः जो मार्ग मनोभीष्ट हो उस मार्गसे वर्तात्र करना चाहिए।

सत्यम् (सच) जिस पदार्थको जैसा देखा, सुना और समझा मनन किया। जिसमें नित्यता दीखे उसे वैसा ही कहना, सत्य कहा है ॥१॥

जातिधर्म, देशधर्म, आत्मधर्म पर आचरण करो ॥२॥

वेद पढ़नेमें आलस्य न करो, 'वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः" ॥३॥

वेदके पढ़ाने वालेको प्रिय वस्तु समर्पण कर प्रजामें सृष्टिक्रमको उल्लङ्घन न करे ॥४॥

सयान्नप्रमादितव्यम् ।५। धर्म्मान्न दितव्यम् ।।६।। कुशलान्न प्रमदितव्यम् ।।७।। भूत्यै न प्रमदितव्यम् ८ देवपतृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् ।९। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदतव्यम् ।।१०।।

सत्य बोलनेमें प्रमाद न करे। अर्थात् यह न समझे कि असत्य कहनेमें कोई धर्म है ।।५।।

धर्मसे प्रमाद न करे। जितने अपने व्यवहारिक सम्बन्ध हैं, वे धर्मपूर्वक होने चाहिए ।।६।।

चतुरतासे प्रमाद न करे। बुद्धिमानोके घमण्डमें ऐसी चाल न चले, जिससे यह लोक और परलोक नष्ट हो जावें ।।७।।

ऐश्वर्यसे प्रमाद न करे। ऐश्वर्यके मदमें आकर कठोर भाषण, दीनोंकी पीड़ाका ज्ञान न होना, ऐसी दशा गिरानेकी है ।।८।।

देवता व पितरोंके काममें आलस्य न करे। यह जीवन केवल विषय भोगके लिये है, ऐसा जान अपनी कुल शक्ति विषयोंमें देकर देवकार्य, पितृकार्यको न भूल जावे ।।९।।

वेद पढ़ने और पढ़ानेमें आलस्य न करे। जो द्विज वेदोंको न पढ़ दूसरी मातृ-विद्यामें अपनी आयु देता है, वह शूद्र हो जाता है और राजा उसे कभी विश्वासमें न लावे। वेदोंसे ईश्वरका ज्ञान, विवेक और सम्पत्ति होती है, जो माता, पिता, आचार्यका उपकार भूल जाते हैं, वे कृतघ्न होते हैं। संसारमें वे किसीके विश्वासपात्र

मातृदेवो भव ॥ ११ ॥ पितृदेवो भव ॥ १२॥
आचार्यदेवो भव ॥ १३ ॥
अतिथि देवो भव ॥ १४ ॥
यान्यस्माकꣳ सुचरितानि तानि त्वयोपासित-
व्यानि नो इतराणि ॥ १५ ॥
ये के चास्मच्छ्रेयांसो जनास्तेषां त्वया आसनेन
प्रश्वसितव्यम् ॥ १६ ॥

नहीं हो सकते हैं। मनुष्यकी पहली पहचान माता, पिता, आचार्य (शुद्ध विद्या पढ़ानेवाला) इनके सत्कार करनेसे है ॥१०॥

माताको देवतुल्य समझो ॥११॥

पिताको देवतुल्य समझो ॥१२॥

विद्या पढ़ाने वालेको देवतुल्य समझो ॥१३॥

अपने घरमें दो तरहके अतिथि आते हैं। एक तो आजकलके कार्यबारी अतिथि, दूसरे हकीकी अतिथि बिना किसी व्यापारके जो विद्वान गृहस्थके घर आते हैं, उन अभ्यागतोंको देवतुल्य समझना चाहिए ॥१४॥

हमारे जो सत्कर्म हैं, उनका आचरण करना और यदि कोई अभ्यास हमारा शास्त्र विरुद्ध हो, उसे त्याग देना ॥१५॥

हितचिन्तक पुरुषोंको और श्रेष्ठ पुरुषोंको उठकर बैठाना, आसन देना यह शिष्टाचार है। अभ्युत्थान करना चाहिए ॥१६॥

श्रद्धया देयम् ॥ १७ ॥ ह्रियादेयम् ॥ १८ ॥ भिया देयम् ॥ १९ ॥ संविदा देयम् ॥२०॥ यदि ते कर्मविचिकित्सा वृत्तिविचिकित्सा वा स्यात् ये तव ब्राह्मणाः समर्षिणः युक्ताऽयुक्ता अलुत्ताः धर्मकामाः यथा वर्तेरन् तथा वर्त्तेथाः ॥२१॥

तस्मादात्महितं चिकीर्षता सर्वेण सर्वं सर्वदा स्मृतिमास्थाय सद्वृत्तमनुष्ठेयम् ॥ २२ ॥

श्रद्धासे देना। सात्त्विकी दान यही है, अनन्त फल इसीका है ॥१७॥

लज्जासे भी देना चाहिए। राजसीदान जैसे कोई रिश्तेदार माँगे ॥१८॥

डरसे भी देना उचित है। तामसी राजाके भयसे ॥१९॥

ज्ञानसे भी दातव्य है। जान बूझ कर किसी जाति देशकी भलाईको ॥२०॥

जो कभी कहीं सन्देह उत्पन्न हो तो जिस प्रकार विचारशील शास्त्रज्ञ और धर्मात्मा व्यवहार करें वैसा बर्तना चाहिए। याने किसी काममें जब अड़चन पड़ जाय, धर्म संकट दीखे, वहाँ पर बुद्धिमान्, सत्यवादी, ब्रह्मचारी विद्वानोंसे सम्मति कर कार्य करे ॥२१॥

इसलिये अपनी भलाई चाहने वाले मनुष्यगणको हमेशा नित्य स्मृतिधाराके अनुसार सद्व्रतका अनुष्ठान करना चाहिए ॥२२॥

अद्वृत्त्यनुष्ठानं युगपत्संपादयत्यर्थद्वयं आरोग्य-
मिन्द्रियविजयश्चेति ॥ २३ ॥

देवगोब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धाचार्यानर्चयेत् ॥ २४॥

अग्निमनुचरेत् ॥ २५ ॥

ओषधीः प्रशस्ता धारयेत् ॥ २६ ॥

द्वौ कालावबुपस्पृशेत् ॥ २७ ॥

मलायतनेष्वभीक्ष्णं पादयोश्च वैमल्य-
मादध्यात् ॥ २८ ॥

वह सद्व्यवहारानुष्टान (दोनों बातोंको) साथ ही इन्द्रियोंका
ाजय और आरोग्यताको सम्पादन करता है ॥२३॥

देवता, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, सिद्ध और आचार्य इनका पूजन
रे ॥२४॥

अग्निहोत्र करे ॥२५॥

हितकारी औषधियोंका संग्रह करे ॥२६॥

सुबह शाम स्नान (शरीर शुद्धि) करे। दोनों समय स्नान
रना उत्तम है। न हो सके तो सुबह स्नान और शामको पंच-
नान भी कर सकता है ॥२७॥

गुह्येन्द्रियादि समय-समय पर शुद्ध करे और पैरोंको भी शुद्ध
रखे। गुह्येन्द्रियको गणेशक्रियासे धोनेसे बवासीर नहीं
ाती ॥२८॥

त्रिःपत्तास्य केशशमश्रुलोमनखान्संहार-
येत् ॥ २६ ॥

नित्यमनुपहतवासः ॥ ३० ॥

सुमनसुगंधि स्यात् ॥ ३१ ॥ साधुवेषः ॥३२॥
प्रसासितकेशामूर्द्धश्रोत्रपादपूर्वाभिभाषी
सुमुखः ॥ ३३ ॥

दुर्गेष्यभ्युपपत्ता, होता, यष्टा, दाता, चतुष्प-
थानां नमस्कर्त्ता, वलीनामुपहर्त्ता, अतिथीनां

पक्षमें तीन दफा क्षौर करे। लेकिन मङ्गलवार चतुर्दशी अमा-
वास्या और जन्मदिन छोड़ दे ॥२६॥

हर रोज साफ सुथरे वस्त्रोंको पहिने ॥३०॥

अच्छे पुष्पोंकी सुगन्धि लेवे ॥३१॥

सीधे कपड़े पहने। कपड़ेका असर मन पर पड़ता है। टेढ़ा
तिरछा कपड़ा पहननेसे वैसी ही तरंग उठती है। इसलिये सीधे वस्त्र
पहिने ॥३२॥

केश, शिर, कान, पैर इनको तेल आदिसे शुद्ध रक्खे। नम्रतासे
प्रसन्नता पूर्वक बातें करे ॥३३॥

आपत्तियोंसे उद्धार करनेवाला, होम करनेवाला, यज्ञ सम्पादन
करनेवाला, देनेवाला, चौराहको नमस्कार करनेवाला, बलिका

पूजकः, पितॄणां पिण्डदः, काले हितमितमधुरार्थवादी ॥ ३४ ॥

वश्यात्मा धर्मात्मा हेता वीर्यफलनेर्षुः ॥३५॥

निश्चिन्तो, निर्भीको, धीमान्, ह्रीमान्, महोत्साहो, दक्षः, क्षमावान्, धार्मिकः। आस्तिकः विनयबुद्धिर्विद्याभिजनवयोवृद्धसिद्धाचार्याणामुपासिता ॥ ३६ ॥

छत्री, दण्डी, मौनी, सोपानत्को, युगमात्रदृक्, विचरेत् ॥३७॥

उपहर्त्ता, अतिथियोंका पूजक, पितरोंको पिण्ड देनेवाला और समय पर हितकी परिमित मीठी वाणी कहनेवाला हो ॥३४॥

इन्द्रियोंको जीतनेवाला, धार्मिक, निमित्त पर पराक्रम दिखाने वाला, फलकी इच्छा न करनेवाला हो ॥३५॥

कुछ चिन्ता न करे, भय न करे, बुद्धिमान्, लज्जावान्, अच्छा उद्योगवान्, चतुर, क्षमाशील, धर्मसेवी, आस्तिक्य, बुद्धियुक्त, सुशील विद्यावान्, कुलमें वृद्ध पुरुषोंकी, सिद्धोंकी, आचार्योंकी उपासना करनेवाला होवे ॥३६॥

छत्र धारण कर, दण्ड हाथमें ले, मौनपूर्वक जूता पहन कर चारों ओर देख भाल कर चले ॥३७॥

मंगलाचारशीलः, कुचेलास्थिकण्टकामेध्यके-
षतुषोकरभस्मकपालस्नानवलिभूमीनां परिहर्त्ता ३८
प्राक् श्रमाद्व्ययामवर्जी स्यात् ॥ ३६ ॥
सर्वप्राणिषु बन्धुभूतः स्यात् ॥ ४० ॥
क्रुद्धानामनुनेता, भीतानामाश्वायितः, दीना-
नामभ्युपपत्ता, सत्यसन्धः, सामप्रधानः परपुरु-
वचनमसहिस्नुः अमर्षघ्नः, प्रशमगुणदर्शी, राग-
द्वेषहेतूनां हन्ता ॥ ४१ ॥

मंगल और आचारशील होवे, निकम्मे वस्त्र, हड्डियाँ, काँटे, बाल, अपवित्र वस्तु, भूसी, ऊषर भूमि; भस्मकपाल, स्नान; बलि; भूमियोंमें गमन न करे ॥३८॥

प्रथम परिश्रम करता हुआ व्यायाम न करे। अर्थात् जब पहले कोई परिश्रम हो चुका हो तब कसरत न करे ॥३६॥

सब जीवोंमें भ्रातृवत् आचरण करे ॥४०॥

क्रोधित पुरुषोंको मनानेवाला होवे, डरे हुए पुरुषोंको धैर्य देने वाला होवे, दीनोंका उद्धार करनेवाला, सत्यप्रतिज्ञावाला, साम, दण्ड भेदादि नीतिमें साम गुण हो, दूसरेके कठोर बचन नहीं सहनेवाला, गुस्सा पीनेवाला, शांतगुण देखनेवाला, रागद्वेषके कारणोंका दूर करनेवाला होवे ॥४१॥

नानृतं ब्रूयात् ॥४२॥ नान्यस्वमाददीत ४३॥

नान्यस्त्रियमभिलषेत् ॥४४॥

नान्यश्रियं न वैरं रोचयेत्, न कुर्यात्पापं, न पापेऽपि पापी स्यात् ॥४५॥

नान्यदोषान् ब्रूयात्, नान्यरहस्यमागमयेत्, नाधार्मिकैर्नरेन्द्रद्विष्टैः सहासीत, नोन्मत्तैर्न पतितैर्न भ्रूणहन्तृभिर्न क्षुद्रैर्न दुष्टैः ॥४६॥

न दुष्टयानान्यारोहेत् न जानुसमं कठिन

झूठ न बोले ॥४२॥ दूसरेके धनको ग्रहण न करे ॥ ४३ ॥ दूसरेकी स्त्रीको न चाहे ॥ ४४ ॥

पराई सम्पत्तिकी अभिलाषा न करे, किसीके साथ वैर न करे, पाप न करे, दुराचारियोंमें भी आप दुराचारी न होवे अर्थात् दुराचारियोंकी संगति किसी दशामें भी न करे ॥ ४५ ॥

दूसरोंके दोषोंको न प्रकट करे, दूसरोंकी गुप्त बार्ताओंको न सुने, धर्महीन और राजद्रोहियोंके साथ न बैठे, पागल और पतितोंके साथ एवं भ्रूणहत्या करनेवालोंके, चुगुलखोरोंके और दुष्टोंके साथ न बैठे ॥ ४६ ॥

बुरी सवारियोंमें न चढ़े, जानुतुल्य कठिन आसनमें न बैठे,

मासनमध्यासीत् नानास्तीर्णमनुपहितमविशालमसमं वा शयनं प्रपद्येत, न गिरिविषममस्तकेस्वनुचरेत् ॥४७॥

न द्रुममारोहेत्, नजलोग्रवेगमवगाहेत्, कूलच्छायां नोपासीत नाग्न्युत्पातमभितश्चरेत् नोच्चैर्हसेत् न शब्दवन्तं मारुतमुत्सृजेत् नासंवृतमुखाजृम्भां क्षवथुं हास्यं वा प्रवर्त्तयेत् न नासिकां कुष्णीयात् न दन्तान् विघट्टयेत् न नखान् वादयेत् नास्थीन्यभिहन्यात् न भूमिं विलिखेत् न छिन्द्यात्तृणम् न लोष्टमृद्गीयात् ॥४८॥

अयोग्य अविस्तृत तथा ऊँचे नीचे बिस्तरमें न सोवे, पर्वतकी विषम चोटियों (खतरनाक घाटियों) में न घूमे ॥ ४७ ॥

वृक्षपर न चढ़े, नदीके प्रवाहमें स्नान न करे, नदीके किनारेके वृक्षकी छायाको सेवन न करे, आग न लगावे, जोरसे न हँसे, शब्दसहित अपानवायुको न छोड़े, बिना मुँहपर वस्त्र लगाये जंभाई, खाँसी, हँसी न करे, नासिकाको न खुजलावे, दाँतोंको न खटखटावे, नाखूनोंको न बजावे, हड्डियोंको न तोड़े, जमीनमें न लिखे, अकारण तृणको न तोड़े, लोहशस्त्रको हाथसे न मले ॥ ४८ ॥

न विगुणसंज्ञैश्चेष्टेत, ज्योतींष्यग्निं चामेध्यमशस्तञ्च नाभिवीक्षेत, न हुंकुर्याच्छवम्, न चैत्यध्वजगुरुपूज्याशस्तच्छायामाक्रामेत, न क्षपास्वमरसदनचैत्यचत्वरचतुष्पथोपवनश्मशानायतनानि आसेवेत नैकः शून्यगृहं न चाटवीमनुप्रविशेत न पापवृत्तान् स्त्रीमित्रभृत्यान् भजेत ॥४६॥

नोत्तमैर्विरुद्ध्येत नावरानुपासीत, न जिह्मं रोचयेत, नानार्यमाश्रयेत्, न भयमुत्पादयेत। न साहसातिस्वप्नप्रजागरस्नानपानाशनान्यसेवत

दुर्जनोंकी सोहबत न करे, आकाशकी बिजली, अपवित्र और अहित वस्तुओंको न देखे, मृतकको देखकर धिक्कार न करे, श्मशान-भूमि पताका, गुरु, बृद्ध, रोगी इनकी छायाको उल्लंघन न करे, रातमें देवमन्दिर, शून्य मन्दिर, आंगन, चौराहा, बगीचा और श्मशान स्थानोंमें वास न करे, अकेला शून्य मकान और जंगलोंमें प्रवेश न करे, दुराचारिणी स्त्री—मित्र और भृत्योंको संसर्ग न करे ॥ ४६ ॥

सज्जनोंसे विरोध न करे, दुर्जनोंकी सेवा न करे, कुटिल बात न कहे, असभ्योंका आश्रय न ले, किसीको डर न दिखावे, अति-साहस, अतिशयन, अतिजागरण, अतिस्नान, अतिपान, अतिभोजन

नोर्ध्वंजानुश्चिरं तिष्ठेत् । न व्यालानुपसर्पेत् । न दंष्ट्रिणः न विषाणिनः पुरोवातातपाश्वया- तिव्रातान् जह्यात् कलिन्नारभेत् नानिभृतो- ग्निमुपासीत नोच्छिष्टो, नाधःकृत्वा प्रतापयेत् नाविगतक्लमो नामनाप्लुतवदनो न नग्नं उपस्पृशेत् न स्नानशाट्या स्पृशेदुत्तमाङ्गम्, न केशाग्राण्यभिहन्यात् नोपस्पृशेत एव वाससी विधूयात् ॥५०॥

नास्पृष्टारत्नाज्यपूज्यं मङ्गलसुमनसाभिनि- ष्क्रामेत् न पूज्यमंगलान्यपसव्यं गच्छेत्,

का सेवन न करे, बहुत देरतक जानु खड़ा करके न बैठे, सर्पोंका पीछा न करे, दाँतवाले, सींगवाले जानवरोंके पीछे न दौड़े, मुँहके सामनेकी हवा घाम अतिदौड़नेवालेके सन्मुख होना तथा झंझाबातको न सेवन करे, झगड़ा न जोड़े, असावधानीसे आगको न सेवे, जूठे हाथोंसे अग्नि सेवन न कर, नीचे रखकर भी न तापे, रास्ते चलकर बिना स्नानसे तथा नग्न होकर स्नान न करे, स्नानकी हुई धोतीसे शिर न पोंछे, स्नान करके केशोंको न झाड़े, बिना आचमन किये वस्त्र न पहिने ॥ ५० ॥

यात्रा समयमें रत्न, घी, पूज्य मंगल वस्तु तथा पुरुषोंको बिना स्पर्श किये गमन न करे, पूज्य तथा मंगल वस्तुओंको बायें ओर कर

नेतरान्यनुदक्षिणम् नारक्तपाणिनस्नातो नोपहतवासा नाजपित्वा नाहुत्वा देवताभ्यो नानिरुप्य पितृभ्यो. नादत्त्वा गुरुभ्यो नातिथिभ्यो नोपाश्रितेभ्यः नापुण्यगधी न मलीनप्रक्षालितपाणिपादवदनो नाशुद्धमुखो नोदङ्मुखो न विमनाभक्ताशिष्टाशुचिक्षुधितपरिचरो नापात्रीष्वमेध्यासु नादेशे नाकाले नाकीर्णे नादत्त्वाग्रमग्नये नाप्रोक्षितं प्रोक्षणोदकैर्न मन्त्रैरनभिमन्त्रितं न कुत्सयन् न कुत्सीतं न प्रतीकूलोपहीतमन्नमाददीत ॥५१॥

गमन न करे, निषिद्ध वस्तुओंकी प्रदक्षिणा न करे, रिक्ताहस्य, बिना स्नान, बिना शुद्ध वस्त्र,बिना जप, बिना, होम किये, बिना देवताओंके समर्पण किये, बिना पितरोंको दिये, बिना गुरुको, बिना अतिथियोंको, बिना आश्रितोंको, बिना अच्छी सुगंधित माला पहिने, बिना हाथ-पांव धोये, बिना मुखशुद्धि, बिना उत्तर मुख, और बिना मनशुद्धि, बिना बर्तनों व वचनोंके, बिना पवित्र भूमि, बिना कुटुम्बियोंके, बिना बलिवैश्वदेव किये, बिना अप्रोक्षित मंत्ररहित निन्दा किये हुए, बिना रुचिके प्रतिकूल अन्नको न खावे ॥ ५१ ॥

न पर्युषितमन्यत्र मांसहरितशुष्कशाक-फलभक्ष्येभ्यः नाशेभुक् स्यादन्यत्र दधिमधु-लवणसक्तुसर्पिभ्यः न नक्तं दधि भुंजीत, न सक्तू-नेकानश्नीयात् न निशि न भुक्त्वा न बहून् न द्विनोदकान्तरितात् न छित्त्वा द्विजैर्भक्षयेत् नानृजुः क्षुयात् नाद्यान्नाशयीत न वेगितो-न्यकार्यः स्यात् न वाय्वाग्निसलिल सोमार्क-द्विजगुरुप्रतिमुखं निष्ठीविकावातवर्चो मूत्राण्यु-त्सृजेत् ॥५२॥

पर्युषित अन्नको न खावे, दही, शहद (मांस हरा शाक सूखा शाक फल ये पर्युषित नहीं होते) दही, शहद, नमक सत्तुके अतिरिक्त अन्न खाकर छोड़ देना उच्छिष्ट होते हैं। रात्रिमें दही न खावे, अकेला सत्तु न खावे, खाकर फिर न खावे, रात्रिमें भी न खावे, दोबार भी न खावे, बिना पानीके न खावे, बिना शस्त्रसे कटी हुई वस्तुको दांतसे न खावे, बिना सीधे हुए न छींके, छींकके अनन्तर ही भोजन, शयन न करे, कार्योंमें शीघ्रता न करे, वायु, अग्नि, पानी, चंद्र, सूर्य, ब्राह्मण और गुरु इनके सन्मुख थूकना, अपनी अपान वायुका निस्सारण, मूत्रपुरीषोत्सर्जन न करे ॥ ५२॥

न पन्थानमवमूत्रयेत् न जनवति, नान्नकाले, न जप्यहोमाध्ययनबलिमङ्गलक्रियासु श्लेष्मसिंहाणकमुच्चरेत्। न स्त्रियमवजानीयात् नातिविश्रम्भयेत् न गुह्यमनुश्रावयेत् नाधिकुर्यात् न रजस्वलां नातुरां नामेध्यां नाशस्तां नानिष्टरूपाचारोपचारां नादक्षिणां न कामां नान्यकामां नान्यस्त्रियं नान्ययोनिं नायोनौ न चैत्यचत्वरचतुष्पथपवनायतनसलिलौषधिगुरुसुरालयेषु नसंध्ययोर्नातिनिषिद्धतिथिषु, नाशुचिर्न

रास्तेमें पेशाब न करे और जनसमूहमें, भोजन समयमें, जप, होम, अध्ययन, बलिवैश्वदेव तथा मांगलिक कार्योंमें श्लेष्म नासामल को न छोड़े। स्त्रीका अपमान न करे, और न गुप्त बात सुनावे, धिक्कार न देवे। रजस्वला, आतुर, अपवित्र, अमंगला, अनिष्टवेशा, अप्रौढदशा, कामरहित, अन्यकामा तथा परस्त्रीसे बिना योनिके और यज्ञस्थानमें, आंगनमें, चौराहमें, पवनस्थान, श्मशानस्थान, जलओषधिस्थान, ब्राह्मण, गुरु, देवमंत्रियोंके स्थानमें तथा दोनों संध्याओंमें वर्ज्य तिथियोंमें, अपवित्र दशामें, औषधि सेवनकालमें, अनविवाहितके साथ और बिना खुशीकी दशामें, भूखे पेट न बहुत

जग्धभेषजो नाप्रणीतसंकल्पो नानुपस्थितप्रहर्षो नाभुक्तवान् नात्यशितो न विषमस्थो न मूत्रोच्चारपीडितो न श्रमव्यायामोपवासक्लमाभिहतो नारहसि व्यवायं गच्छेत् ॥५३॥

न सतो न गुरून् परिवदेत्, नाशुचिरभिचारकर्मचैत्यपूज्यपूजाध्ययनमभिनिवर्तयेत् न विद्युत्स्वनार्त्तवीषु नाभ्युदिताषु दिक्षुनाग्निसंप्लुते न भूमिकंपे न महोत्सवे नोल्कापाते न महाग्रहोत्पातागमने न नष्टचन्द्रायां तिथौ, न संध्ययोर्न मुखाद्गुरोर्नावपतितं नातिमात्रं

खाकर ऊँची, नीची दशाओंमें टट्टी पेशाबसे पीड़ित होता हुआ, खेद, कसरत, उपवाससे, श्रान्तदशामें और जनसमुदायमें मैथुन न करे ॥ ५३ ॥

सज्जन तथा गुरुलोगोंकी निन्दा न करे, अपवित्र दशामें, आथर्व कर्म, यज्ञस्थान, पूज्य-पूजा तथा पठन न करे, बिजलीकी चमकमें, मेघगर्जनमें, बीमारीमें, संध्या समयमें, आग लगनेमें, भूमिकम्पमें, महोत्सवमें, उल्कापातमें, ग्रहण समयमें, अमावास्याके दिन तथा

नात्यन्तं न विस्वरं नातिद्रुतं न विलम्बितं नातिक्लीबं नात्युच्चैर्नातिनीचैः स्वरैरध्ययनमभ्यसेत् ॥५४॥

नातिसमयेद्द्रुह्यात् न नियमं भिन्द्यात् न नक्तं नादेशे चरेत् न संध्यास्वभ्यवहाराध्ययनेषु स्त्रीस्वप्नसेवी स्यात् न बालवृद्धलुब्धमूर्खक्लिष्टक्लीबैः सह सख्यं कुर्यात् । न मद्यद्यूतवेश्याप्रसङ्गरुचिः स्यात् । न गुह्यं विवृणुयात्। न कञ्चिदवजानियात् । नाहं मानी स्यात् । न दक्षो नादक्षिणो नासूयको न दक्षिणात्

बिना गुरुमुखके स्वररहित, पदच्छेदरहित, अतिशीघ्र, विलंबतासे, अत्युच्च तथातिनीच स्वरसे अध्ययन न करे॥ ५४ ॥

असमयमें किसीके साथ द्रोह न करे, नियमको न छोड़े, रात्रिको अज्ञात स्थानमें गमन न करे। संध्या समयमें भोजनकालमें, अध्ययनकालमें, स्त्रीगमन, निद्राको परित्याग करे, बालक, वृद्ध, लोभी, मूर्ख, रोगी तथा नपुंसकोंके साथ मित्रता न करे। मदिरापरायण, द्यूत (जूआ) तथा वेश्यागमनमें रुचि न रक्खे। गुप्तवार्त्ता को प्रकट न करे, किसीका अपमान न करे, अहंकार न करे, अतिचपल अतिमूर्ख न हो, ईर्षारहित होवे। चतुर पुरुषोंकी निन्दा न करे, गौ को ताड़न न करे, वृद्धोंको, गुरुलोगोंको, जनसमूहोंको और

परिवदेत् न गवांदण्डमुद्यच्छेत् न वृद्धान् न गुरून् न गणान् न नृपान् वाधिक्षिपेत् न चातिब्रूयात् ॥५५॥

न बान्धवानुरक्तकृच्छ्राद्द्वितीयगुह्यज्ञानं बहिः कुर्यात्। नाधीरो, नात्युच्छ्रितसत्वः स्यात्, नाभृतभृत्यो, नाविस्रब्धी, स्वजनो, नैकः सुखी न दुःखशीलाचारोपचारो, न सर्वविस्रम्भी, न सर्वाभिशङ्की, न सर्वकालविचारी, न कार्यकालमतिपतयेत्। नापरीक्षितमभिनिविशेत्, नेन्द्रियवशगः स्यात्, न चञ्चलं

राजाओंको धिक्कार न करे। इनके साथ बहुत भाषण भी न करे ॥ ५५ ॥

मित्र-मण्डलीके प्रीतिवश होकर कभी किसीके रहस्यको न खोले, अधीर तथा उच्छृंखल न होवे, बिना वेतनके नौकरी न करे, किसीका विश्वास न करे, एकान्तिक (ध्यान छोड़) सुखी न होवे, नित्य दुःखियोंकी संगति न करे, सब पर विश्वास न करे। सब लोगोंपर शङ्का न करे, हमेशा सोचता ही न रहे, कामके वक्तको न गवांवे, अपरीचितको प्रवेश न करने देवे, इन्द्रियोंके आधीन न होवे।

मनो भ्रामयेत् , न बुद्धीन्द्रियाणामतिभारमादध्यात्, न चानतदीर्घसूत्री स्यात् न क्रोधहर्षावनुविदध्यात्: न शोकमनुवसेत् न सिद्धावौत्सुक्यं गच्छेत् नासिद्धो दैन्यम् प्रकृतिमभीक्ष्णं स्मरेत् हेतुप्रभावनिश्चितः स्यात् ॥५६॥

हेत्वारम्भं निश्चित्य न कृतमित्याश्वसेत् न वीर्यं जह्यात् नापवादमनुस्मरेत् नाशुचिरुत्तमाज्याक्षततिलकुशसर्षपैरग्निं जुहुयात् आत्मानमाशीभिराशसानः अग्निर्मे नापगच्छेच्छरी-

मनको चञ्चल न करे, बुद्धि तथा सब इन्द्रियोंको अति भार न देवे, अति दीर्घसूत्री न होवे, अति क्रोध और हर्षको न करे, शोक न करे, कार्य सफलतामें अधिक प्रसन्न न होवे। असिद्धिमें दुःख न करे, प्रकृतिको बराबर याद रक्खे कारणोत्पत्तिमें निश्चय करे ॥ ५६ ॥

कार्यके आरम्भमें कारणको सोचे, कार्यके लिये इतने पर निश्चिन्त न होवे, अर्थात् ईश्वरीय सत्ताको कार्यसिद्धिमें समझे, शक्ति न छोड़े, लोकापवादका स्मरण न करे, अपवित्रदशामें उत्तम पदार्थ घी, अक्षत, तिल, कुश, सर्षपसे अग्निमें हवन न करे, अपनेको आशीर्वादोंसे युक्त करता है, मेरे जठरमें जठराग्नि वास करे, वायु मेरे प्राणोंकी रक्षा

रात् वायुर्मे प्राणानादधातु विष्णुर्मे बलमादधातु इन्द्रो मे वीर्यम् शिवा मां प्रविशन्त्वापः आपोहिष्ठेत्यपः स्पृशेत् द्विःपरिमृज्योष्ठौ पादौ चाभ्युक्ष्य मूर्द्धनि खानि चोपस्पृशेत् अद्भिरात्मानं हृदयं शिरश्च ब्रह्मचर्यज्ञानदानमैत्रीकरुणाहर्षोपेक्षाप्रशमपरश्च स्यादिति ॥५७॥

करे, विष्णु मेरे बलकी रक्षा करे, इन्द्र मेरे वीर्यकी रक्षा करे, कल्याणदायक जल मेरेमें प्रवेश करे, आपोहिष्ठेति मंत्रसे जल स्पर्श करे दोबार ओठोंको और पैरोंको जलसे स्पर्श करे, शिर और इन्द्रियोंको स्पर्श करे, जलसे आत्माको शिरको प्रोक्षण करे, ब्रह्मचर्य, ज्ञान, दान, मैत्री, दयालुता, हर्षउपेक्षा अर्थात् सज्जनोंसे मैत्री, दुखियोंपर दया, उच्च कर्मियोंपर हर्ष, दुर्जनोंकी उपेक्षा करता हुआ शांतिमें मेरा हृदय तत्पर रहे, ऐसी भावना करे ॥ ५७ ॥
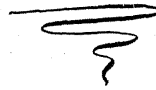
वृक्षविज्ञान

मनुष्य जीवनका स्वभावतः वृक्ष, बगीचा, खेती, मकान, जलाशयसे नित्य सम्बन्ध है। इसलिये जिन-जिन बातोंसे मानव-जीवनीका प्राकृतिक सम्बन्ध रहता है, उन-उन सम्बन्धोंको नियम पूर्वक जानना शास्त्रीयजीवनका उत्कर्ष है, अर्थात् जिस पदार्थसे हमारा सम्बन्ध प्रवाहरूपसे चला आता है, उसमें यह देखना कि इसमें कितना अंश और किस प्रकारका हमें ग्राह्य है, और कितना अग्राह्य है, प्रायः इस बातको न जानकर स्वाभाविक आवश्यकताओंको जैसे-तैसे पूराकर देना मात्र लक्ष्यसे कभी-कभी महान् और अनिवार्य हानियाँ हो जाती हैं, मानव जातिके परम्परागत इन आवश्यकताओंको देख भगवान् कश्यपने काश्यपसंहितामें वृक्षायुर्वेद रचा है, जिसमें वृक्ष और भिन्न-भिन्न प्रकारकी कृषिका विज्ञान बताया है कि, किस प्रकारकी खेती करनी हमें धर्म है, और कब वृक्षछेदन कर सकते हैं, अनुचित और अनियम तथा अज्ञात वृक्षछेदनसे उभयलोक च्युति और वनस्पति हत्याके भ्रूण पापसे वंशनाश तथा पातित्य हो जाता है, जिससे वह पाप न लगे और धर्मपूर्वक निर्वाह हो वह सम्पूर्ण स्थापत्य, वार्क्ष, वानस्पात्य, विज्ञान कश्यपने दिखलाया है, जो पूर्णतया पूर्वीय सिद्धान्तोंपर दिखलाया गया है, वह न केवल आधिभौतिक सुख और आधिभौतिक आवश्यकताओंपर ही है, बल्कि

आधिदैविक रक्षण पूर्वक आधिभौतिक आवश्यकताओंके पूर्ति परक है। इसलिए धर्मपूर्वक वृक्षके सम्बन्धमें जानना परम आवश्यक है।

इसी प्रकार मकानकी आवश्यकतापर विश्वकर्माने भवन विचित्र निर्माण पद्धतिका आविष्कार कर यह दिखाया है कि "चतुर्लक्षाणि मानवा:" अर्थात् चार लाखकी मनुष्य जाति है, उसमें भी मनुष्य-मनुष्यमें अवान्तर भेद होनेसे प्रति मनुष्यको पृथक्-पृथक् प्रकारके स्थान बननेसे जैसे जिसके लिए हितप्रद है, और धर्म्य है, उसको वैसे-वैसे स्थानोंमें रहनेसे ही पूर्ण आयु वंश विस्तार होता है।

मुनि सारस्वतने भी मनुष्योंका जलसे नित्य सम्बन्ध देख भूगर्भ जलवाहिनी शिराओंके विज्ञान दिखाकर धर्मादि साधनके योग्य पूर्त क्रिया (तालाब आदि) बनाना कैसे-कैसे स्थानपर जहाँ पर पातालवाहिनी शिरा हो, उनका विज्ञान बताया है।

अब वृक्षारोपणके पूर्व वृक्षाधिष्ठातृ देवताका विकाश एवं खेतीमें देशभक्तिका उदयपूर्वक सस्यसम्पत्ति जिस प्रकार धर्म्य हो, उसकी कुछ संक्षिप्त बातें दिग्दर्शन कराते हैं।

अर्थात् किस कालमें किस स्थानके किन-किन वृक्षोंको मनुष्य अपनी आवश्यकताके निमित्त ले सकता है, महर्षि याज्ञवल्क्यने सामान्यतया उपपातक प्रकरणमें "इन्धनार्थं द्रुमक्षेद:" द्रुमछेदन मात्र उपपातक पढ़ा है, परन्तु कश्यपने अन्यत्र लिखा है, कि देववृक्ष

को छोड़ और तीर्थ स्थान तथा आरोग्य- युवा वृक्षोंको छोड़कर हवा से गिरे हुए या जिनकी चोटी सूख गई हों ऐसे-ऐसे वृक्षोंको अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके निमित्त ले सकते हो। तीर्थ स्थानोंमें, वृक्ष रूपमें तथा वल्मीक रूपमें तपस्वी और देवताओंका होना शास्त्रीय दृष्टिसे प्रतीत होता है, ऐसे स्थानोंमें केवल वृक्षोंकी हत्या मात्रसे आजीवन करना वृक्ष हत्याका पापी होना है, और इस हत्या से प्रायः वंशनाश और अन्तिम दशामें घोर आपत्तियां होती हैं, इसलिये शास्त्रके अनुसार ही वृक्षसे इन्धन व मकानकी लकड़ी लेना उचित है।

उन वृक्षोंको जिनको शास्त्रमें छेदन करना लिखा है, उन-उन तिथि, वार, नक्षत्रोंमें पूजन कर जितना अपने मकानको आवश्यक है, उतने वृक्षोंको काटे अधिक नहीं और जहाँ तक हो वृक्ष सम्पत्तिकी रक्षा करे।

वृक्षोंका लगाना रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, अनुराधा, चित्रा, रेवती, मूल, श्रवण, हस्त, अश्विनीमें प्रशस्त है।

ऐसे ही जब खेती करना हो प्रथम भूमिका संस्कार करके यानी हल लगाकर नई भूमिमें—

शुचिर्भूत्वा तरोः पूजां कृत्वा स्नानानुलेपनैः ।
रोपयेत रोपितांश्चैव पत्रैस्तैरेव जायते ॥१॥

मृद्वी भू सर्ववृक्षाणां हिता तस्यां तिलान् वपेत।
पुष्पितां तांश्च मृद्नीयात कर्मैतप्रथमं भुवः ॥२॥

पवित्र होकर वृक्षका पूजन करके वृक्ष लगावे, प्रथम भूमिको खन कर पत्थर साफ करके कोमल बना ले, तब उसमें पहले पहल तिल बोवे। जब उन तिलके पौधों पर पुष्प लग जायँ, तब हल लगा कर उन पौधोंको उस जमीनमें उलट-पलट कर चूर देवे, यह भूमिका प्रथम संस्कार है ॥ १-२ ॥ इससे पृथ्वीकी उर्वरा शक्ति का विकाश होता है, परन्तु स्मरण रहे कि जिस तरह पश्चिमी कृषि-विज्ञान-वेत्ता लोगोंने भूमिके एकमात्र आधिभौतिक स्वरूप को लेकर उसमें नई खात डाल कर सालके भीतर तीन-चार बार खेती करना और परिमाणसे अधिक अन्न या स्थूल अन्न बनानेकी विधियां लिखी हैं, निस्सन्देह वैसे करनेसे आप कई बार अधिक परिमाण अन्न, फल आदि उससे ले सकते हैं, परन्तु उस प्रक्रियामें महान् दोष यह है कि जो भूमि एक सौ या पांच सौ या सहस्र वर्ष तक फलवती होगी। वैसे करनेसे उसका ओज बहुत शीघ्र नष्ट होकर थोड़े ही कालमें उसमें उर्बरा शक्तिका नाश होकर वह भूमि ऊसर बंजर होकर किसी प्रकार उपजाव देनेको समर्थ न होगी। जैसे एक गाय चार सेर दूध देती है और तीन वर्षमें बच्चा देती है, उसे घास, दाना देनेसे जितनी दुग्धमें वृद्धि होती है, वह ठीक है। परन्तु पम्प लगा कर नमककी पिचकारी देनेसे जो उससे अधिक दुग्ध लिया जाता है, उसका परिमाण यह होता है कि वह दुग्ध

जल्दी बन्द हो जाता है और गाय—२० वर्ष बचनेवाली गाय चार पाँच वर्षमें पूर्णायु कर लेती है, यही हाल उस भूमिका समझिए। दूसरा हमारा जो लक्ष्य है कि पशुजीवनसे शास्त्रीय-जीवन बनाना, वह नहीं बनेगा। शास्त्रीय-जीवन प्रत्येक पदार्थके अन्दर जो उसका आधिदैविक तत्त्व है, उसकी रक्षाका विशेष ध्यान रखता है। यदि किसी आधिभौतिक सम्पत्तिके ह्रास होने पर भी आधिदैविक सम्पत्ति की रक्षा होती हो, तो उस दशामें आधिभौतिक लाभ पर दृष्टि न दीजिए, जितनी उसकी आधिदैविक दशा पर देनी चाहिए। हमारी कृषि-विद्या यह दिखाती है कि भूमिका अधिष्ठातृ देवताका पूजन और उसका उस भूमिमें विकाश होनेसे तुम्हारी सस्य-सम्पत्ति बनी रहेगी। यही कारण है कि आजकल इस कृषिविभागको केवल आधिभौतिक तत्त्वमात्रके उपयोग लेनेसे प्रायः अन्नकाल और उस अन्नसे अल्पवीर्य, रोग, व्याधि होने लगती है। जो अन्न ब्रह्मस्वरूप होनेसे जीवन, बल, विवेक बढ़ानेवाला है, उसमें आधिदैविकताका नाश करने पर वही विष, काल, अल्प वीर्यप्रद हो रहा है। इसलिए यदि वीर्यवान होना और अन्नके अमृतमय परिणामको पाना चाहते हैं, तो भूमिज्ञानको केवल आधिभौतिक विज्ञानमात्रसे प्रयोग न करें, उसमें आधिदैविक विज्ञान परम आवश्यक है, जो कश्यपसंहिता तथा वराहमिहर और विश्वकर्माप्रकाशसे स्पष्ट है। कश्यप कहते हैं, वागीचेमें प्रथम इन वृक्षोंको लगाना चाहिए :—

अशोकचम्पकारिष्टपुन्नागाश्च प्रियङ्गव।

शिरीषोदुम्बराः श्रेष्ठाः पारिजातकमेव च ॥
एते वृक्षाः शुभा ज्ञेयाः प्रथमं तांश्च रोपयेत् ॥३॥
पनसाशोककदली जम्बूलकुचदाडिमाः॥ ४ ॥
द्राक्ष्यापालिवनाश्चैव बीजपूरातिमुक्तकाः ।
एते द्रुमाः काण्डरोप्याः गोमयेन प्रलेपिताः ॥
मूलोच्छेदेथवा स्कन्धे रोपणीयाः परे ततः ॥५॥
अजातशाखान् शिशिरे जातशाखान् हिमागमे ।
वर्षागमे च सुस्कन्धान् यथादिक्स्थान्प्ररोपयेत् ६

बागीचेमें प्रथम अशोक, चम्पा, अरिष्ट, पुन्नाग, प्रियङ्गु व शिरीष, उदुम्बर पारिजातके वृक्ष लगानेसे देवताओंका निवास होता है ॥३॥

उक्त वृक्षोंकी कलमें इस प्रकार लगानी चाहिए, पहले गाँठकी जगह पर गोमयसे पट्टी बाँधे और जब कलम तैयार हो जाय, तब उसे वहाँसे काटकर दूसरे सजातीय वृक्ष पर लगावे, जब दूसरी जगह वह कलम लगावे, तो मिट्टीसे उस जगहका लेपन कर दे और जड़को गाढ़ी मिट्टीसे बाँध दे ॥४-५॥

कलम किस ऋतुमें पृथ्वी पर जमानी चाहिए—जिन वृक्षोंमें लता-अंकुर न आए हों, उन्हें शिशिर ऋतु (माघ फाल्गुन) में लगावे और जिनके लता-अंकुर निकल गये हों, उन्हें मार्गशीर्ष

(पौष मास) में तथा जिनकी पत्ती व टेनी खूब उठ आयी हों, उन्हें वर्षाकालमें। जिस दशामें जो वृक्ष लगाना लिखा है, उस क्रमपूर्वक लगानेसे उनमें दिव्य शक्तियोंका विकाश यानी देवताओंका वास होता है ॥६॥

घृतशीरतिलक्षौद्रविडङ्गक्षीरगोमयैः ।
आमूलस्कन्धलिप्तानां संक्रामणविरोपणम् ॥७॥

एक स्थानसे उठाकर दूसरे स्थानमें (Transpantation) जब वृक्ष लगाया जाता है, तो उसके जड़से लेकर शाखा पर्यन्तको घी, तिल, शहद, विड़ंग, गो-दुग्ध और गोबर इन सबको इकट्ठा कर हाथसे सब चीजोंको मिला कर उस वृक्षपर लेपन कर दे, तब दूसरी जगह पर लगावे ॥७॥

कश्यपसंहितामें लिखा है :—

अन्तरं विंशतिः हस्ता वृक्षाणामुत्तमं स्मृतम् ।
मध्यमं षोडशज्ञेयमधमं द्वादशस्मृतम् ॥ ८ ॥

एक वृक्षसे दूसरे वृक्षका अन्तर २० हाथ उत्तम है। जगह कम हो तो १६ हाथ, लेकिन १२ हाथसे कम अन्तरमें फल अच्छे नहीं होंगे। इसमें भी बड़े छोटे पौदेके लिहाजसे उनके बीच कितनी जगह खाली रहनी चाहिए, जिसमें पौदे अपनी गिजा आसानीसे खींच सकें और एक दूसरेके हिंसक न बन सकें। मनुष्योंको जिस प्रकार जलवायुके परिवर्तन या विषम होनेसे रोग होते हैं, उसी तरह

वृक्षोंको भी अधिक शीत; धूप, हवासे रोग होते हैं। जो वृक्ष जितना सर्दी, गर्मी और हवा सहन कर सकता है या जिसको जितने दर्जेकी (Degree) ठण्ड, गर्म हवाकी आवश्यकता है, उससे अधिक या न्यून उस वृक्षके लिये रोगजनक है। यह नहीं कह सकते हैं कि सभी प्रकारके वृक्षोंको समान शीत, उष्ण आवश्यक हो। वृक्ष-भेदसे और फसलके भेदसे उनका तारतम्य जानना चाहिए। जब वृक्ष रोगी होते हैं, तब उनके पत्ते धूसर होने लगते हैं, अंकुर मुर्झाने लगते हैं, टेनी सूखने लगती हैं; वृक्षसे रसका निर्यास निकलने लगता है। ऐसी दशामें उन वृक्षोंकी चिकित्सा करनी चाहिए ॥८॥

चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशोधनम्।
विडङ्गघृतपङ्कक्तान् सेचयेत् क्षीरवारिणा ॥९॥

प्रथम सूखी-सूखी टैनियोंको कैंचीसे छाँट दे और फिर विड़ंग, घृत, कीचड़ सबको मिलाकर उसपर खूब लेप दे तथा पानीमें दुग्ध मिला कर उस पानीसे उसे सींचता जावे, जबतक वह वृक्ष ठीक न हो जाय ॥९॥

जिस वृक्षके फल सूख जायँ या कीड़ा लग जाय या फल न आवें उसको कुलत्थ, उड़द, मूंग, तिल, जव इन सबको पीस कर जलमें भिगोकर दूधमें पका ले और जब दूध ठण्डा हो जाय (याने दूध इतना ज्यादा डाले कि दवा पक कर पनेरी रहे) तब उस दूधसे पिचकारी (Injection) करे या जड़में सींचे, तब फल खूब लगेंगे। कश्यप कहते हैं कि फल जिस वृक्षमें न आवें या कम आवें, तो उनकी चिकित्सा इस प्रकार करे :—

अजाविकानां द्वौ प्रस्थौ शकृच्चूर्णं च कारयेत्।
तिलानामाढकं दद्यात्सक्तूनां प्रस्थमेव च ॥ १० ॥
गोशकृच्छतमेकं स्याद्द्वे सार्धे सलिलस्य च ।
सप्ताहमुषितैरेतैः सेकं दद्याद्वनस्पतेः ।
स भवेत् फलपुष्पैश्च पत्रैश्चांकुरितैर्वृतैः ॥११॥

बकरीका गोबर दो प्रस्थ, तिल चार प्रस्थ, एक प्रस्थ जवका सक्तु, सौ प्रस्थ गोबर, दो सौ प्रस्थ जल इनकी खाद बनाकर सात दिन गढ़ेमें रक्खे तब वृक्षोंको देवे, इससे फल खूब आवेंगे ॥१०-११॥

बीज अच्छे बनानेका प्रयोग वराहमिहर कहते हैं—

वासराणि दश दुग्धभावितं बीजमाज्यहुतहस्तयोजितम् । गोमयेन बहुशो विरूक्षितं क्रौडमार्गपिशितैश्च धूपितम् ॥ १२ ॥

घीके हाथसे मलकर बीजको दुग्धमें रख दे फिर सुखा कर घीके हाथसे दुग्धमें रक्खे । इस तरह १० दिन रोज करता जाय, पीछे सूखे गोबरके साथ खूब मलकर दाने-दाने सुखा दे, तब वह बीज उत्तम धान्यको पैदा करता है ॥१२॥

स्थापत्यविज्ञान

भवन निर्माणके लिये प्रथम यह देख लेना आवश्यक है कि इस भूमिके चारों दिशाओंमें कोई दुष्यवायु या सामयिक नीतिसे कोई आशंकाजनक बात तो नहीं है और हमारी इच्छाके अनुसार मकान बनाने पर उस मकानकी पूर्वदिशा, आग्नेय, नैऋत्य दिशामें मकान पर वेध लगानेवाले वृक्ष आदि तो नहीं हैं। इतना विचार कर लेनेके पश्चात् भूमिकी परीक्षा, मिट्टीके रंग, स्वाद, जमीनकी प्राकृतिक स्थिति आदिसे परीक्षा कर ले।

बराहमिहराचार्य कहते हैं—

सितरक्तपीतकृष्णा विप्रादीनां प्रशस्यते भूमिः ।
गन्धश्च भवति यस्यां घृतरुधिरान्नाद्यसमः ॥
कुशयुक्ताशरबहुला दूर्वाकाशावृताक्रमेणमही॥१॥

गर्गाचार्य—

मधुरा दर्भसंयुक्ता घृतगन्धा च या मही ।
उत्तरप्रवणा चेति ब्राह्मणानां तु सा शुभा॥२॥

श्वेतरंगकी भूमि ब्राह्मणको उत्तम है, लालवर्णकी क्षत्रियको, पीत वर्ण वैश्यको, कृष्णा शूद्रको, घृतगन्धा भूमि यज्ञ वृद्धिकरी होनेसे ब्राह्मणको, रुधिरगन्धा क्षत्रियको, अन्नगन्धवाली वैश्यको, मद्यगन्ध-वाली शूद्रको हितकर है। फिर देखे जिसमें कुश पैदा हों वह याज्ञिक

होनेसे ब्राह्मणको शुभ है, शर कण्टकावृत्त क्षत्रियको, दूर्वा हरित घास वाली वैश्यको और काशवाली शूद्रको। इसी तरह उत्तरकी तरफ ढालू ब्राह्मणको, पूर्वको नमती हुई क्षत्रियको, दक्षिणको नमी हुई वैश्यको और पश्चिमको नमती हुई शूद्रको। अब अव्यक्त गुण, दोष, दैवीपरीक्षासे इस प्रकार करे कि उस स्थान पर रात्रिको चार रंगके पुष्प रख दे, जिस रंगका पुष्प बिना मुर्झाये सुबह तक रह जाय, उस पुष्पके वर्णानुसार उस वर्णके मनुष्यको वह लाभदायिनी भूमि भूमि होगी। यह अव्यक्त गुग-दोष, परीक्षा दैवीभावना करके होती है ॥१-२॥

दूसरी प्रकार।

"आमेवा मृन्मये पात्रे कृत्वा वर्तिचतुष्टयम्।
यस्यां दिशि प्रज्वलति चिरं तस्यैवसाशुभा॥३॥

किसी मिट्टीके दीपक पर चार बत्ती जलावे। जिस दिशामें ज्यादा देर तक बत्ती जलती रहे वह दिशा शुभकारी है ॥३॥

अव्यक्त गुण-दोषकी परीक्षा करनेका जहाँ अवसर देखा गया है, प्रायः उसका निर्णय मनोमय देवता पर निर्भर है, परन्तु मनोमय देवताका विकास उस व्यक्तिके मन पर होता है, जिसमें मनकी बिमारियाँ (असत्य भाषण, छल, कपट, धूर्तता) न हो। शकुन्तलामें दुश्यन्तका वाक्य है—

"सतां हि सन्देहपदे तु वस्तुषु
प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः" ॥ ४ ॥

अर्थात् जब शुद्ध मनुष्योंको किसी बातके निर्णय करनेमें संदेह रह जाय तो उस समय मनही से निश्चय हो सकता है। वराहमिहराचार्यका वाक्य है—"तत्तस्य च भवति शुभदं यस्य च यस्मिन् मनो रमते।" जिस भूमिमें जिसका मनोदेवता रमण करे उसको वही हितकर है ॥४॥

भूमि परीक्षाके अनन्तर भूमि शुद्धि करे—

सम्मार्जनेनाञ्जनेन सेकनोल्लेखनेन च ।
गवां च सन्निवासेन भूमिशुद्ध्यति पञ्चभिः॥५॥
गृहमध्ये हस्तमितं खात्वा परिपूरितं पुनः स्वभ्रम् ६

साफ करना, हल लगाना, गायोंका गोष्ठ लाँघ कर रखनेसे भूमि शुद्ध हो जाती है ॥५॥

जहाँ पर मकान बनाना हो, उस घरके मध्यमें एक हाथ गहरा गड्ढा खोद कर मिट्टी बाहर निकाले, फिर उसी मिट्टीसे उस गड्ढे को भरे। यदि मिट्टी पूरी न हो तो अनिष्ट, सम होनेसे समभाव, अधिक होनेसे वृद्धि होती है ॥६॥

इसके अनन्तर गृहस्वामीके हाथके नापसे नीचे लिखे अनुसार वास्तु निकाले—

गर्ग :--

गृहान्तरदिशामानं संगुणय्य च परस्परम् ।
वसुभिर्भागमाहृत्य शिष्टं वास्तुनरं वदेत् ॥ ७ ॥
रिक्तो ध्वजश्च ध्वांक्षश्च सिंहः श्वा वृषभस्तथा ।
वानरो भद्र इत्यष्टौ ज्ञेयाः वास्तुनरा बुधैः ॥ ८ ॥
बाहो प्रबाहो संयोगादलमन्योन्यताडितम् ।
वसुभक्तं ततः शेषं सेव्य वास्तुनरं वदेत् ॥ ९ ॥
व्यास त्रिगुणित कृत्वा विष्कम्भ तत्समादिशेत् ।
व्यासार्द्धवर्गास्त्रिगुणः फलं स्यात् परिवर्तुले ॥ १० ॥
द्विर्न्यस्य परिधे वर्गामेकस्मादाश्रिताद्धितात् ।
लब्ध संशोध्य परतो भक्ता द्वादशभिः फलम् ॥
बाहुप्रबाहुसंयोगादलघातं त्रिकोणके ॥ ११ ॥

मकानकी लम्बाई, चौड़ाईमें परस्पर गुणा कर आठका भाग दे । जो बचे उसको क्रमसे रिक्त आदि वास्तु समझे । याने शून्य शेषमें रिक्त और एक शेषमें ध्वज आदि ।

चतुरस्र क्षेत्रमें उसके आयताकार भुज कोणाकार भुजका योग करके आधा करे फिर परस्पर गुणा करके आठका भाग दे. शेष वास्तु जाने ॥७-८॥

बर्तुलाकार क्षेत्रमें व्यासको त्रिगुणित कर परिधि उसमें जोड़ देवे। फिर व्यासार्द्धका वर्ग निकाल कर त्रिगुणित करके आठका भाग देकर वास्तु निकाले ॥९॥

षट्भुज क्षेत्रमें परिधिका वर्गाकार दो स्थानमें लिखे, फिर सम्पूर्ण भुजयोगके $\frac{1}{3}$ से दूसरे स्थानमें रक्खे हुए संख्यामें भाग लेवे और लब्धिको उसमें घटाकर तब जो संख्या रहे, उसमें १२ का भाग देकर लब्धिमें फिर वास्तु निकाले ॥१०॥

त्रिकोण क्षेत्रमें सब भुजोंका योग कर $\frac{1}{2}$ करे और योगको $\frac{1}{3}$ से गुणा कर पुनः वास्तु निकाले। इस प्रकार गृहस्वामीके हाथके परिमाणसे वास्तु-पुरुष निकाल उस मकान पर रहनेसे उसका शुभाशुभ क्यों होता है ॥११॥

हिरण्यगर्भाचार्यका मत है—

गृहन्तु विवधं प्रोक्तं शरीरैस्तु पृथग्विधैः॥१२॥

देहोंके भिन्न-भिन्न होनेसे उसके अनुसार घर भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होने चाहिए।

मकानकी नींव ज्योतिषीसे दिन बार दिखाकर उत्तरायण शुक्लपक्ष में आग्नेय दिशामें मकानको नींवका पत्थर शुभ मुहूर्त्त पर मोती, सोना, चाँदी तथा तरह-तरहके अन्न, फल पुष्पोंके साथ रक्खे।

मकान किस वर्णके मनुष्यको कितना लम्बा-चौड़ा करना चाहिए, उसका विचार विश्वकर्माप्रकाश व किरणतन्त्रमें विस्तारसे है। कश्यप कहते हैं—

"अष्टोत्तरशतं हस्तं विस्तारनृपमन्दिरम् ।
हस्तद्वात्रिंशता युक्तो विचारःस्याद्द्विजालये ॥ १३ ॥

१०८ हाथ राजाका मुख्य भवन एवं ३२ हाथ सामान्य व्यक्तियों का एक शालाभवन किरणतन्त्रमें लिखा है ॥१३॥

बाकी दरवाजे, दिवालकी मोटाई-ऊँचाई दूसरे ग्रन्थोंमें है। चतुःशाला जो मकान होते हैं, उनमें किस शालामें क्या काम करना चाहिए। ईशान कोणमें देवताका स्थान, आग्नेय दिशामें रसोई, नैऋत्यमें भण्डार, वायव्यमें अन्नका भण्डार, किरणतन्त्रमें विस्तारसे कहा है—

पूर्वस्यां श्रीगृहं प्रोक्तमाग्नेय्यां स्यान्महानसम् ।
शयनं दक्षिणे कार्यं नैऋत्यामायुधाश्रयम् ॥ १४ ॥
भोजनं पश्चिमायां च वायव्यां धनसञ्चयम् ।
उत्तरे द्रव्यसंस्थानमैशान्यां देवतागृहम् ॥ १५ ॥

यह दिग्विभाग किसीका मत है। वास्तुपुरुषसे कोई प्रधान पूर्वादि दिशाओंसे लेते हैं। पूर्वमें गद्दी (प्रधान) स्थान, आग्नेयमें रसोई, दक्षिणमें शयनागार, नैऋत्यमें शस्त्रका स्थान, पश्चिममें भोजन स्थान, वायव्यमें भण्डार, उत्तरमें खजाना, ऐशान्य दिशामें देवताका घर और जलका भी स्थान रखे, अन्यत्र जलका स्थान हानिकारक है ॥१४-१५॥

वास्तु मकानका जहाँ पर स्थापित किया है, वहाँसे पूर्व उत्तर दिशाकी भूमि बढ़ जावे तो धन नाश, सन्तान क्षय होता है, वहाँ पर दुर्गन्ध रहे तो सन्तान हानि होती है। वह स्थान टेढ़ा हो जाय, तो भ्रातृ विनाश, दक्षिण दिशा बढ़ जाय तो गृहस्वामीका जीवन शीघ्र समाप्त होता है, इसलिए—

इच्छेद्यदि गृहवृद्धिं समन्ततािद्ववर्धयेत्तुल्यम्॥१६॥

यदि उस मकानमें समृद्धि बढ़ाना चाहे तो चारों दिशा तुल्य ऊँचाईकी हों। अब मकानके चारों ओरके वृक्षोंका बेध देखे।

गर्ग—

वर्जयेत् पूर्वतोऽश्वत्थं प्लक्षं दक्षिणस्तथा।
न्यग्रोधं पश्चिमे भागे उत्तरे चाप्युदुम्बरम्॥१७॥

पूर्व दिशामें पीपलके होनेसे मकानमें भूत, प्रेतका भय होता है। दक्षिण में (प्लक्ष) पाकर होनेसे हार, पश्चिममें बरगदका पेड़ होनेसे राजदण्डका भय, उत्तरमें उदुम्बर (गूलर) वृक्षसे नेत्रमें पीड़ा होती है। मकानके अति निकट काँटेवाले वृक्षोंके होनेसे शत्रुबाधा, दुग्ध वाले वृक्षोंसे धन नाश और फलवाले वृक्षोंसे सन्तान हानि होती है।

यदि कार्यवश मकानके निकटसे उन वृक्षोंको न काट सके तो उनके और मकानके बीच पुन्नाग, अशोक, अरिष्ट, बकुल, पनस, शमीके वृक्षोंको पूजन कर लगा दे अर्थात् भवनके नजदीक ये वृक्ष लगानेसे वार्क्ष बेध नहीं होता है।

शस्त्रौषधीद्रुमलता मधुरा सुगन्धा ॥ १८ ॥

अब अपने मकानके समीप किस-किसका घर गृहस्वामीको हानिकारक है, उससे बचे वाराहि० ॥ १८ ॥

सचिवालयेर्थनाशधूर्तगृहे सुतवधसमीपस्थे ।
उद्वेगो देवकुले चतुष्पथे भवति चाकीर्तिः ॥१६॥
चैत्यं भयं ग्रहकृतं वल्मीकश्वभ्रसंकुले विपदः ।
गर्तायां तु पिपासा कूर्माकारे धनविनाशः ॥२०॥

अपने घरके समीप मन्त्रीका घर होनेसे धन-सम्पत्तिका नाश, धूर्त मनुष्यके पड़ोससे सन्तान क्षय, देव मन्दिर होनेसे उद्वेग, चौराहेके होनेसे यशनाश, चितिवृक्षोंके होनेसे घरमें भय रहे व बाँबी मिट्टी नजदीक होनेसे विपत्तियाँ होती हैं, गड्ढे-गड्ढे होनेसे पिपासा रोग, कूर्माकार ढेल होनेसे धनक्षय होता है ॥ १६-२० ॥ शुद्ध भूमि तथा निर्दोष पड़ोसियोंके होनेसे सुख आनन्द होता है ।

भूगर्भजलवाहिनी नाड़ीविज्ञान

पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नत-निम्नसस्था ॥ २१ ॥

मनुष्यदेहमें जिस प्रकार भिन्न-भिन्न कार्यवाहिनी नाड़ियाँ होती हैं, इसी प्रकार पृथ्वीमें भी विभिन्न शिरा होती हैं ॥ २१ ॥

उनमें स्वभावतः जिन नाड़ियोंके द्वारा भूगर्भगत सलिल स्पन्दन होता है, स्थान-स्थानमें उन अव्यक्त जलवाहिनी शिराओंको व्यक्त वृक्ष, मृत्तिका, वल्मीक चिह्नसे जानकर प्रायः मरु देशमें भी जल पा सकता है, शास्त्र विज्ञानका परम उत्कर्ष यही है कि अव्यक्त दशामें स्थित वस्तुको उसके व्यक्त कार्योंसे भली प्रकार जानकर अभीष्टता को प्राप्त करे, प्रायः दिशा चार उपदिशाओंमें एक एक प्रधान दिव्य नाड़ियां होती हैं, जैसे ऐन्द्री, आग्नेयी इत्यादि। इनके मध्यमें नवमी शिरा कुमुदा नामकी जलवाहिनी शिरा होती है, इनसे अतिरिक्त सैकड़ों नाड़ियां भूगर्भमें होती हैं, इनमें जिन नाड़ियोंका सम्बन्ध पातालसे है वे भूशिरा जलवाहिनी शिरा हैं, उनका परिज्ञान समीपस्थ वृक्षादिसे होता है, इस विषयको सारस्वत मुनिने सारस्वत-संहितामें विस्तारके साथ वर्णन किया है।

सारस्वत—

निर्जले वेतसं दृष्ट्वा तस्माद्वृत्तादपि त्रयम् ।
पश्चिमायां दिशि ज्ञेयमधः सार्द्धेनवैजलम् ॥२२॥
नरोत्र षष्ठिद्विगुणः चांगुलानां प्रकीर्तितः ।
तत्र खात्वार्द्धपुरुषं भेकपाण्डुरवर्णकः ॥२३॥
मृत्पीतापुटभेदैश्च पाषाणोधस्ततो जलम् ।
शिरा पश्चिमदिक्स्था च वहतीति विनिर्दिशेत् २४

जाम्बूवृक्षात्पूर्वभागे वल्मीको यदि दृश्यते ।
तरोः दक्षिणतो हस्तांस्त्रींस्त्यक्त्वाधो जलंवदेत् २५
नरद्वयेऽर्धपुरुषे मत्स्योश्मापक्षिसन्निभः ॥
ततोपि मृत्तिका नीला ततो मृष्टं जलं वदेत्॥२६॥

मरु भूमिमें जहाँ जल नहीं है, वहाँ जहाँ कहीं अमलवेतका वृक्ष दीखे, उससे तीन हाथ दूर पश्चिम दिशामें साढ़े नौ फिट गहरेमें जलवाहिनी शिरा मिलेगी। उसके चिन्ह यह हैं कि प्रथम पाण्डुरङ्गके मेढककी आकृतिके पत्थर या मिट्टी मिलेगी, पीछे पीले रंगकी मृतिका फिर दोनों पुट जिनके फटे हों ऐसे पत्थर मिलेंगे और उनके नीचे जल मिलेगा। दूसरी परीक्षा जल रहित देशमें यह है कि जहाँ कहीं ऐसे स्थान पर जामुनका वृक्ष दीख पड़े उसके पूर्व दिशामें यदि वल्मीक (बाँबी) दीख पड़े तब उस वृक्षके दक्षिण दिशामें तीन हाथ दूरी पर १२½ फीट नीचे खोदनेसे जल मिलेगा। उसके पहले मिट्टी मत्स्यके आकारके हरे वर्णके पाषाण मिलेंगे, पीछे नीलवर्णकी मृत्तिका मिलेगी, उसके नीचे प्रभूत जल मिलेगा ॥२५-२६॥

तीसरी प्रकार—यदि उदुम्बरका वृक्ष वहाँ हो तो उस वृक्षके पश्चिमकी ओर तीन हाथकी दूरी पर साढ़े नौ फीट या तीन सौ अंगुल परिमित गहराईमें जल होगा, उसके पूर्व ६० अंगुल खोदने पर

श्वेत मिट्टी सर्पके आकारकी नजर आवेगी और जब काले काले प्रस्तर दीख पड़ें तब समझना कि जल निकट है।

चतुर्थ प्रकार—यदि अर्जुन (कदम्ब) वृक्ष के उत्तर की ओर बांबी दीख पड़े, तब उससे ३ हाथ पश्चिम दिशामें १५ फिट गहराईमें जल मिलेगा, ५ फिट खोदने पर धूसर रंगकी मिट्टी मिलेगी, उसके बाद काली मिट्टी, तब पीली, तब बालूवाली, तब श्वेत मृत्तिका, उसके नीचे जल मिलेगा।

पंचम प्रकार—मिट्टी निर्गुण्डी (सिवांली) के वृक्ष पर बांबी लगी हो तो उससे ३ हाथ दक्षिण दिशा की तरफ १० फिट खोदने पर जल मिलेगा, पहले कपिल वर्णकी मृत्तिका, तब पाण्डु वर्ण, पीछे श्वेत वर्णकी मृत्तिका के नीचे नीचे जलका श्रोत मिलेगा।

यदि पाषाणभेदके वृक्षके बायीं तरफ बेरका वृक्ष हो और वहां पर बांबी हो तब पाषाणभेदके वृक्षके उत्तर और ६ हाथ दूरी पर १५. या १६. फिट गहराई पर जल होगा।

सारस्वते—

पूर्वभागे बदर्याश्चेद्वल्मीको दृश्यते जलम्।
पश्चाद्धस्तत्रये वाच्चं खाते तु पुरुषत्रये ॥२७॥
पलाशयुक्ता यत्र बदरी यत्र दृश्या ततोपरे।
हस्तत्रयादधस्तोयं सपादे पुरुषत्रये ॥ २८ ॥

नरे तु दुण्डुभः सर्पो निर्विषश्चिह्नमेव च।
अधस्तोयं च सुस्वादु दीर्घकालं प्रवाहितम् ॥२६॥

यदि बेरके वृक्षके पूर्वकी ओर वल्मीक मृत्स्तूप दीख पड़े, तब तीन हाथ दूरी पर पश्चिमकी ओर जल १५ फिट गहराई पर मिलेगा, उसके खादने पर प्रथम गोधा दीख पड़े, पीछे श्वेत मृत्तिका. यदि पलाशवृक्षयुक्त बेरका वृक्ष दीखे और बांबी भी उस पर या उसके पास हो तब १६ या १७ फिट गहराई पर पश्चिम दिशामें जल होगा, खोदने पर प्रथम विषरहित सर्प नजर आवेगा ॥२७-२६॥

बिभीतकस्य याम्यायां वल्मीको यदि दृश्यते ।
करद्वयान्तरे पूर्वे सार्द्धे च पुरुषे जलम् ॥३०॥

भिलावाके वृक्षके दक्षिण तरफ वल्मीक दीखे तब दो हाथ पूर्वकी ओर सवा सात फिट गहराईमें जल मिलेगा, यदि भिलावा वृक्षके पश्चिम दिशामें वल्मीक हो तो २० फिट पर जल निकलेगा ॥३०॥

तरुणां यत्र सर्वेषामधस्थो दर्दुरो भवेत् ।
वृक्षादुदग्दिशि जलं हस्तात् सार्धैर्नरैर्धः ॥३१॥
चतुर्भिर्पुरुषैः खाते नकुलो नीलमृत्तिका ।
पीतश्वेता ततो भेकं सदृशो श्मा प्रदृश्यते ॥३२॥

जिस कीसी भी वृक्षके नीचे मेंढक रहे, उन वृक्षोंसे ३ हाथ उत्तर दिशामें २० फिट गहराई पर जल मिलेगा, ५ फिट खनने पर प्रथम नेवला मिलेगा। नीले रंगकी मिट्टी, तब पीत, फिर श्वेत मृत्तिका, तब मेंढककी तरह पाषाण, उनके नीचे जल होगा ॥३१-३२॥

यदि कुरञ्जाके वृक्षके दक्षिण तरफ सर्पका बिल (बांबी) दीख पड़े तब दक्षिण दिशाकी तरफ २ हाथ दूरी पर ५ फिट गहराईमें जल होगा, उसके चिह्न यह हैं ३ फिट खनने पर कछुवा, उसमें पहले पूर्व दिशाकी सलिलवाहिनी शिराका उद्घाटन होगा, परन्तु उसमेंसे सामान्य जल वहां ही मिलेगा।

उत्तरी दिशामें दूसरी जलकी शिरा मिलेगी, उसमें हरे रंगके पत्थर दीख पड़ेंगे।

मधूक (महुवे) के वृक्षके उत्तर दिशामें यदि सांपकी बांबी हो तब उस वृक्षसे पश्चिम दिशामें ५ हाथ छोड़कर ४० फिटमें जल मिलेगा। उसमें यह चिह्न होंगे, ५ फिट खनने पर सर्प, तब धूमली (रक्त-श्याम) मिट्टी, तब कुलथके रंगके कंकर मिलेंगे।

ऐसे स्थान पर माहेन्द्री नामकी जलवाहिनी नाड़ी होती है, इसका जल प्रायः फेनयुक्त होता है।

यदि कदम्ब वृक्षके पश्चिम दिशामें सर्पका बिल हो, तब उस वृक्ष से दक्षिण दिशामें ३ हाथकी दूरी छोड़कर ३० फिट गहराई पर जल मिलेगा; ऐसे स्थानोंमें कावेरी नामकी रसवाहिनी नाड़ी होती है; ऐसे कूप खोदनेपर प्रथम लोह, गन्धवाला जल ५ फिट गहराई पर

स्वर्णके रंगका मेंढक या मेंढककी आकृतिका पाषाण तब पीत वर्णकी मृत्तिकाके नीचे प्रचुर जलकोश मिलेगा।

और भार्ङ्गी, त्रिवृत्त, दन्ति, लक्ष्मणा, नवमल्लिका ये ओषधीवृक्ष जहाँ कहीं भी हों इनमेंसे किसी भी वृक्षके ३ हाथ दक्षिण दूरी पर १५ फिट गहराई पर जल मिल सकता है।

इसी तरह तिलक, आम्रातक, वरुणक, भल्लातक, बिल्व, तिन्दुक, अङ्कोल, शिरीष, अञ्जन, वञ्जुल, अतिबला इन वृक्षों पर यदि वल्मीक लगा हो, तब उससे उत्तरकी तरफ तीन हाथ दूरी पर २० फिट गहराईमें जल मिलेगा, पर जहां ये वृक्ष स्वाभाविक हों।

अतृणे सतृणा यस्मिन् सतृणे तृणवर्जिता।
तस्मिन् शिरा प्रदिष्टव्या वक्तव्यं वा धनं तदा॥३३॥
कण्टक्यकण्टकानां च व्यत्यासेम्भस्त्रिभिः करैः।
खात्वा त्रिपुरुषं सार्द्धं तत्राम्भो वा धनं वदेत्॥३४॥

जहां सम्पूर्ण भूमि तृणसंकुल हो और उस भूमिके किसी एक अंश पर घास न हो या सारा जंगल ऊपर (तृण घासके बिना हो) और वहां किसी एक स्थानविशेषमें प्रचुर तृण उगे हों, तब उस स्थानमें जहां सब जगह घास होने पर बीचमें खाली है या घास-वर्जित भूमि बीचमें तृणवती हो २० फिट गहराई पर जल या धन मिलेगा॥३३-३४॥

कराटक्यकराटकानां व्यत्यासेम्भस्त्रिभिः करैः पश्चात्। खात्वा पुरुषत्रितयं त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात्॥३५॥

यदि कांटेदार कोई वृक्ष जैसा खदिर, अकण्टक, पलाश आदि वृक्षोंके बनमें हो या पलाशादि अकण्टक वृक्ष खदिरके वनमें हो, तब उस वृक्षसे पश्चिममें तीन हाथ छोड़कर १५ फिट गहराईमें जल या धन मिलेगा ॥३५॥

ऐसी भूमि जहां पैरकी आहटसे शब्द हो वहां १५ फिट गहराई पर कौवेरी नाम प्रभूत जलवाहिनी शिरा मिलेगी।

यदि किसी भी वृक्षको कोई एक शाखा विवर्ण होती है, तो नीचे जमीनकी तरफ मुड़ जाय वहां भी १५ फिट खननेसे जल मिलेगा।

यदि कराटकारिका कराटकैर्विना दृश्यते सितैः कुसुमैः ॥३६॥

यदि कण्टकारि वृक्ष बिना कांटेका श्वेत पुष्पवाला दीख पड़े, तब उसके नीचे १५ फिट गहराई पर जल होगा ॥३६॥

सफेद पुष्पवाला कनेर वृक्ष या श्वेत पुष्पवाला पलाश वृक्ष जहां हो, उससे दक्षिगमें १० फिट गहराईमें जल मिलेगा।

ऐसे ही कीकरके वृक्षके उत्तरमें सर्पका बिल हो तब साढ़े चार हाथ दक्षिणकी तरफ २० फिटमें जल होगा।

ग्रन्थिप्रचुरा यस्मिन् समीभवेदुत्तरेण वल्मीकः ।
पश्चात्पञ्चकरान्ते शतार्द्धसंख्यैर्नरैः सलिलम्॥३७॥

जिस समीके वृक्ष पर कहीं एक ग्रन्थि हो और उससे उत्तरमें वल्मीक हो तब वहां पर ५ हाथ पश्चिम १००० फिट पर जल मिलेगा ॥३७॥

पलाशके वृक्षके साथ जहां शमी हो वहां पश्चिम दिशामें ३०० फिट पर जल है ।

जहां कुछ दूर तक सर्वत्र भूमि गरम मालूम दे, उसके बीचमें यदि कहीं पर ठण्ढा मालूम पड़े, ऐसी ठण्ढी भूमिमें कहीं गर्म मालूम पड़े वहां १५ फिट पर पानी होगा ।

हरिश्चन्द्रोपाख्यानम्

एक भारतवर्ष ही नहीं, किन्तु विद्वत्संसारमें ऐसे कम मनुष्य होंगे, जिन्हें सत्यव्रतपरायण महाराजा हरिश्चन्द्रका पावन नाम श्रवणगोचर न हुआ हो।

इस नश्वर जगत्में उन्हींकी ही सच्चरित्र वैजयन्ती, परिवर्तन प्रचण्ड वायु वेगके टकराने पर भी स्थिर बनी हुई है, जिन्होंने अनेकानेक बाधा और आपत्तियोंके आने पर भी अपने व्रतकी रक्षा की।

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी अभी विवाह कर राज्य-प्रासादमें प्रवेश करते ही थे कि समनन्तर जटिलवेशमें राज्यलक्ष्मी त्याग कर पूज्य पिताकी प्रतिज्ञा पालनार्थ द्वादशवर्षीय अरण्यव्रतपालन को चल दिये। पिता स्वर्गवास, माताका वैधव्य दुःख, साध्वी सीता की सुकुमारावस्था, पुनः राज्य करनेके लिए वशिष्ठजीका अनुरोध, प्रकृतिका परम प्रेम, भरत सहस्रशः प्रार्थना करता है कि पिताका स्वर्गवास हो गया है, राज्य शून्य पड़ा है, ज्येष्ठ भ्राता ही राज्यका अधिकारी है, किन्तु भगवान् रामचन्द्रजीको यह सब कठिनाइयां अपने प्रतिज्ञात व्रत पालनसे हिला न सकीं। विपत्ति और अनेक विघ्नोंको पार कर जिस प्रकार अपने व्रतको पूर्ण किया है, उनके पुण्यचरित्र रामायणसे भलीभांति समझ सकते हो।

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने इस वंशकी उच्चता और पूज्य होनेका जो प्रमाण दिया, वह मानवजातिमें उच्चताका जीवन है :—

रघुकुल रीति सदा चलि आई ।
प्राण जायँ पर वचन न जाई ॥

भीष्मपितामह, पितामह अर्थात् ब्रह्माके पदसे पुकारे जाते हैं, क्योंकि जिस प्रकार अपने व्रतकी रक्षा की, पिताकी प्रतिज्ञा सत्य रखनेको आजीवन ब्रह्मचर्यको धारण किया, जिनको विवाहके लिए माता गान्धारीने पीछे अनेक युक्तियोंसे बाध्य भी किया, किन्तु भीष्मका उत्तर सुनिए वे अपने उत्तरमें क्षत्रिय जातिका लक्षण दिखाते हैं ।

अर्थात् सत्यसे जो क्षत्रिय विचलित हो गया फिर उसका क्षत्रिय-पन ही क्या रहा "सत्याच्च्युतक्षत्रियस्य न धर्मेषु प्रसज्यते" ।

श्रद्धास्पद महाराजा युधिष्ठिरका राज्य त्यागना, कष्ट सहना, सत्यके पालनकी अपेक्षा कुछ नहीं था, वस्तुतः जिनका कथन यह रहा कि "स सन्धिमास्थाय सतां सकाशे को नाम जह्या-दिह राज्यहेतोः" अर्थात् जब सबके समक्ष प्रतिज्ञा कर लो तो राज्यके लिये प्रतिज्ञा भ्रष्ट होना सज्जनोंका काम नहीं। धन्य धन्य मर्यादा पालक पूज्य वंशको जिनके सामने प्रतिज्ञा-पालनकी अपेक्षा राज्यसुख तक तुच्छ हुआ, तब और व्यवहार

की गणना ही क्या हो सकती है। पूज्यपाद शंकराचार्य अपने व्रतको निभानेसे ही आचार्यपीठको अद्यावधि उज्ज्वल कर रहे हैं। राजा उत्तानपादके पुत्र प्रातःस्मरणीय ध्रुवजीने अपने व्रतको पराकाष्ठा तक पहुंचानेसे अपनी नित्यता प्राप्त की है। प्रत्येक व्रतधारी अपने व्रतकी सफलता और प्रतिष्ठाको तब ही प्राप्त कर सकता है, जब बिघ्न और (अन्तरायों) को पार करनेमें विचलित न हो, इस पर एक उज्ज्वल इतिहास महाराज हरिश्चन्द्रका है, जिसकी दृढ़ निष्ठासे एक पार्थिव सृष्टि ही सन्तुष्ट न हुई बल्कि दिव्य आन्तरिक्ष देवता भी सुप्रसन्न हुए। उस मंगलमय समयमें दुष्ट राज्य शासनसे जो अन्नकाल अकाल मरणादि उत्पात होते हैं, कोई भी उत्पात सुनाई नहीं देते थे। पुत्र, पिता के अज्ञाकारी, स्त्री पतिकी अनुगामिनी, शिष्य गुरुके अनुयायी इस प्रकार सम्पूर्ण अपनी अपनी मर्यादा पर स्थिर थे। हरिश्चन्द्र का "सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्" यही महावाक्य सर्वस्व था। महर्षि विश्वामित्रसे यज्ञ निमित्त दक्षिणा देनेकी जो प्रतिज्ञा की थी, उसके पालनके लिए राज्य छोड़ा, धन-सम्पत्तिकी तो गणना ही क्या थी, प्रेयसी पत्नी और वंश विस्तारक प्रिय पुत्र तकको विक्रय कर दिया। इस पर भी दक्षिणा पूर्ण न होनेसे चाण्डालका दासत्व और उन हृदयविदारक घटनाओंमें प्रवेश कर धैर्य और सत्य प्रतिज्ञाका, अविनाशिधर्मका साक्षात्कार कर दिखाया, जिसके सुनते ही अश्रुपात और रोमाञ्च होते हैं, किन्तु घोर आपत्तियोंके आनेपर भी अपनी सत्य प्रतिज्ञाका परित्याग न

किया । परिणाममें उस व्रतसे जो अमानुषीय फल हुए, वह इतिहास-वक्ताओंको परमेश्वरके भक्तवत्सल और सत्यके अनन्त फलकी शिक्षा देनेवाले

एक समय राजा हरिश्चन्द्र वनमें विचर रहे थे, कि आकस्मिक एक करुणा भरी दु:खोंकी पुकार राजाके कर्णगोचर हुई। राजाके चारों ओर दृष्टि देनेपर कोई भी जीव दिखाई न दिया, फिर तत्काल वैसे ही वह शब्द जोर-जोरसे सुनाई दिया कि "मेरी रक्षा करो-मेरी रक्षा करो" यह सुन राजाको यह प्रतीत हुआ, कि किसी न किसी स्त्रीका यह आर्तनाद है

यह जान राजा जैसे उसकी रक्षानीमित्त शब्दानुसारी हुआ, तैसे ही उस अरण्यमें एक भयानक विघ्नराजका राजाको साक्षात् हुआ, जो किसी मनुष्यजातिपर चिपटकर अपना दुष्ट प्रभाव डालना चाहता था, इधर विश्वामित्र असिद्ध विद्याओंको प्रखर तपसे सिद्ध कर रहे थे। वह जो किसी स्त्रीका आर्तनाद सुनाई दिया था, वह वियोगिनी या दु:खिनी बालाका विलाप या आर्तक्रन्दन नहीं था, किन्तु विश्वामित्र जिन असिद्ध विद्याओंको सिद्ध कर रहे थे, महर्षिके उग्र तपस्यासे भयभीत होकर उन विद्यारूपिणी स्त्रियोंका वह दु:ख-नाद था। इधर जहां विद्या ही विश्वामित्रके उत्कृष्ट तप प्रभावसे भयभीत हो रही थी, वहां उस तपोमूर्ति (विश्वामित्र) पर तो विघ्न अपना प्रभाव डाल ही नहीं सकते थे। राजाको क्रोधदशामें देख विघ्नको राजाके शरीरपर प्रभाव डालनेका अवसर मिला।

अब हरिश्चन्द्रकी तीव्र परीक्षाका समय उपस्थित होना था, राजाको तत्काल तमोगुण छा गया, स्त्रीके रुदनकी ओर देखकर बोला—मत डर-मत डर कौन दुष्ट है, जो मेरे होते हुए इस प्रकार इस निर्जन वनमें रक्षायोग्य स्त्रीजातिसे अनुचित व्यवहार कर रहा है। अरे ! अग्निको वस्त्रपर लपेटकर निर्भय ले जाना चाहता है। क्या मेरे प्रखर वाणोंसे भेदित होकर तू दीर्घ निद्रावलम्बन करेगा ? हे स्त्रीको दुःख देनेवाले ! विदित होता है, कि तू यमराजके आतिथ्य ग्रहण करनेका उत्सुक है। राजाकी इस प्रकार तीव्र घोषणा सुनकर जैसे विश्वामित्रको क्रोध हुआ, वैसी विद्या वहां से अन्तर्धान हुई।

इधर तपोमूर्ति विश्वामित्रको देखकर राजा अश्वत्थपत्रवत् कम्पायमान होने लगा। विश्वामित्र राजाको देख सक्रोध भृकुटी उठाकर बोले—दुरात्मन ! खड़ा रह, राजा सुनते ही नम्रतापूर्वक ऋषिके पादाभिवन्दनकर प्रार्थना करने लगा। प्रभो ! यह मुझे मालूम नहीं था, कि आप भी इस विपिनमें विचर रहे हैं, इस निर्जन अरण्यमें स्त्रीके आर्तनादको सुनकर किसके मनमें दया उत्पन्न न होती, जिस पर दुःखियोंकी रक्षा करना ही राजाका परम धर्म है। क्योंकि :—

दातव्यं रक्षितव्यञ्च धर्मज्ञेन महीक्षिता।
चापं चोद्यम्य योद्धव्यं धर्मशास्त्रानुसारतः ॥१॥

दान देना, रक्षा करनी और न्यायपूर्वक युद्ध, यह राजाका धर्म ही है ॥ १ ॥

इस वाक्यको सुनकर विश्वामित्र बोले—यदि आप राजधर्मव्रती हो और अधर्मसे भय है, तो शीघ्र यह बतलाइये कि कौन दान लेनेका अधिकारी है, और किसकी रक्षा की जाय, कैसे शत्रुसे युद्ध हो। राजा उत्तर देता है :—

दातव्यं विप्रमुख्येभ्यो ये चान्ये कृशवृत्तयः ।
रक्ष्या भीताः सदा युद्धं कर्तव्यं परिपन्थिभिः ॥२॥

श्रेष्ठ (विद्वान् तपस्वी) ब्राह्मणोंको दान देना तथा दुर्बल गरीबों की सहायता करना, भयभीतकी रक्षा करनी, अनीति पर चलने-वालोंसे युद्ध करना यह क्षात्रधर्म राजाके लिये परम कर्तव्य है ॥ २ ॥

इस उत्तरसे सन्तोषित हुए ऋषि राजसूर्य यज्ञके लिए सर्वस्व दान मांगने लगे, सत्यसन्ध दानी हरिश्चन्द्रने स्वीकार किया। राज्य, धन, भृत्यादि सर्वस्व ऋषिको समपर्णकर केवल साध्वी राज्ञी और पुत्र रोहिताश्वको साथ ले तपस्याके लिये काशीपुरीको जाने लगे, राजाके वियोगसे व्याकुल नागरिक लोग शोकातुर होते हुए राजाके दर्शनार्थ आबाल, वृद्ध, नर-नारी, बालकोंको गोदमें लेजाकर मार्गमें गये, चित्तकी वियोगाग्निको अश्रुपातसे शीतल करते हुए, गद्गद

वाणीसे बोले । प्रभो ! हम दुखियोंका क्या अपराध है, जो बलात् आपने हमारा त्याग किया, इस दुःखिनी प्रजापर टुक दृष्टि-पात तो कीजिये, किस शोकाग्निसे संतप्त हो रही है । इस बीच विश्वामित्रने वहाँ पर उपस्थित होकर राजाको धिक्कार और थूत्कार किया कि "तुझ लोभाकृष्ट राजाको लज्जा नहीं" जो दिये हुए दान पर फिर दृष्टि डाल रहा है, अरे पापी ! प्रतिज्ञात असमग्र दक्षिणा देकर जा रहा है, अवशिष्ट दक्षिणाको भी दे जा । राजा धर्मभयसे कांपता एक मासमें दक्षिणाका अवशेष भाग समर्पण कर दूंगा, यह कहकर स्त्री-पुत्रको साथ लेकर चल दिया । कहां तो छत्र चामरादि से विभूषित राजप्रसादमें बिहार करना हाय ! दैव अब वानप्रस्थके वेशमें केवल स्त्री और पुत्रको साथ लेकर काशीपुरीमें हरिश्चन्द्र पहुंचे, ऋषिके साथ जो एक मासमें अवविष्ट दान देनेकी प्रतिज्ञा की थी, उस समयके उपस्थित होते ही विश्वामित्र राजाके सन्मुख जाकर तीव्रतर्षके साथ कहते हैं । राजन् ! एक मास समाप्त हो चुका है, अब दक्षिणा दीजिये । राजा अञ्जली बाँध प्रार्थना करता है । महर्षे ! स्त्री पुत्र और मेरा शरीर आपके सन्मुख है, जिससे आपका कार्य हो स्वीकार कीजिये । किन्तु ऋषि केवल धनकी ही याचनाका अवरोधकर रहे हैं, अब मास पूर्तिमें दिनार्द्ध शेष है, इतने कालकी और प्रतीक्षा कीजिये । यह राजा ऋषिसे कह धनका आगमन सम्भव न देख धर्मसे अत्यन्त शोकार्त हो गया, हाय ! क्या करूँ, कहाँ जाऊँ । ब्राह्मणसे जो प्रतिज्ञाकी उसके अपूर्ण होनेपर न जाने

किस नारकीय गतिको भोगना पड़ता है, इस तरह शोकसन्तप्त सत्यसन्ध राजाको देखकर राजपत्नी बोली :—

त्यज चिन्तां महाराज स्वसत्यमनुपालय ।
श्मशानवत् वर्जनीयो नरः सत्यबहिष्कृतः ॥३॥
नातः परतरो धर्मः वदन्ति पुरुषस्य तु ।
यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यपरिपालने ॥ ४ ॥

राजन् ! चिन्ता मत करो, अपने सत्यका पालन कीजिये। सत्यका परित्याग जिसने किया, वह पुरुष श्मशानकी तरह त्याज्य है। पुरुषश्रेष्ठ ! सत्यके पालनतुल्य दूसरा धर्म नहीं। अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान, धर्मादि तबतक सब निष्फल हैं, जबतक सत्यका पालन न किया जाय ॥ ३-४ ॥

हे राजन् ! अब मेरी सन्तान हो गयी ? इस शब्दार्द्धको शोकावरोध गद्गद वाणीसे कहते ही राज्ञी शोकार्ता होकर मूर्च्छित हो गई। रानीको शोकसे सन्तप्त देख राजा बोले, हे प्रिय ! सन्ताप मत करो, रोहिताश्व तुम्हारे सन्मुख है, क्या कहना चाहती हो, रानी चेतनावलम्बनकर अपने अभिप्रायको स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट करने लगी :—

"राजन् जातमपत्यं मे सतां पुत्रफलास्त्रियः।
समां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम्"॥५॥

राजन्! अब मेरे संतति हो गई है, स्त्रियोंको पुत्रोत्पत्ति तक ही गृहस्थ ऋण है, सो आप मुझे बेचकर ब्राह्मणको दक्षिणा दीजिए॥ ५ ॥

महाराज्ञीके इस दशामें ऐसे वाक्य सुन राजाका चित्त अत्यन्त विदीर्ण हुआ, और मूर्च्छित हो कर गिर गये। राजाको मूर्च्छिता-वस्थामें देख रानी हाय राजन्! पुष्पशय्या छोड़कर आज इस कण्टक प्रस्ताराकीर्ण ऊषर भूमि ही आपके लिये दैवने कोमल शय्या बनाई है, इस प्रकार विलाप करती हुई, स्वयं भी भूमिपर कमलिनी की तरह गिर मूर्च्छित हुई, इधर पति-पत्नी इस शोक काण्डसे मूर्च्छित ही थे, कि विश्वामित्र तत्काल वहां पर उपस्थित हो दम्पति को उस दशामें देख शीतल जल सिंचन कर, अवशिष्ट दक्षिणाको मांगने लगे। बोले—कि दूसरेका ऋण जितने अधिक समय तक रखा जाय, उतना ही वह बढ़ता जाता है, राजन्! अपनी प्रतिज्ञाको सोचो।

सूर्य सत्यसे प्रकाश करता है, पृथ्वी सत्यके आश्रयपर है, सत्य ही परम धर्म है। सौ अश्वमेध और एक सत्यकी तुलनाकी जाय, तो सत्य ही श्रेष्ठ निकलेगा। विश्वामित्रके इस तरहके वचन सुन इस घोर धर्म संकटमें राजा रानीसे बोला, "अहो, हत्यारे भी जिस

निन्दनीय कर्मको नहीं करते हैं अर्थात् (स्त्री विक्रय) अब मुझे उस नीच वृत्तिकी शरण लेनी पड़ती है, यह कह कर (अपनी प्राणप्रियाको बेचने नगरमें जाता है) निदान राजा नगरमें जाकर स्त्री-विक्रयके लिये पुकार करने लगे। इस बीच एक बृद्ध ब्राह्मण उस स्थानपर पहुँचकर बोला—भाई मेरी स्त्री सुकुमारी है, वह घरका कार्य नहीं कर सकती, अतः गृहकार्यके लिए मैं इस स्त्रीको मोल ले सकता हूं, यह कह कर राजाको उसका मूल्य दे राजपत्नीको अपने साथ ले चला। बालक रोहिताश्व माताकी दशा देख फूट-फूटकर रोता हुआ, मा-मा कहता पीछे हो लिया. बालकके वियोगको देख रानी अश्रु-पूर्णनेत्रोंसे बृद्ध ब्राह्मणको देखकर उच्छ्वास लेती हुई बोली, प्रभो ! जिस प्रकार गायके साथ उसका वत्स भी मोल लेते हैं, कृपया मेरे साथ इस बालकका भी मूल्य देकर ले लीजिए। ब्राह्मण बालकका मूल्य राजाको देकर उन दोनोंको अपने घर ले गया। हरिश्चन्द्र राजा-महिषीकी इस दशाको देख शोक और वियोगसे सन्तप्त होकर रोने लगे। हाय ! राजभवनकी राजलक्ष्मी ? जिसके स्पर्शको सूर्य, चन्द्र नहीं कर सकते थे, जिसकी सुकुमारता शिरीष पुष्पसे भी अधिक थी, आज वह प्राणप्रिय मुझ दुष्टकी निर्बुद्धिसे दास-भावको प्राप्त करवाई गई। पुत्र, सूर्यवंशी युवराज ! तुम्हारा विक्रय भी आज मैंने किया, अनेक तरह अपनेको शोकाकुल हो धिक्कार करता हुआ भी सत्यव्रत पालनकी अपेक्षा इस कष्टको तुच्छ प्रतीत कर रहा था। राजाके विलाप करते-करते राजपत्नी और राजकुमार दृष्टिसे बाहर हो गए। उनका मूल्य ऋषिको समर्पण किया, उस धनको

स्वल्प देखकर ऋषि क्रोधित हो भ्रुकुटी उठाकर राजासे बोले—मेरे यज्ञकी पूर्त्तियोग्य द्रव्य दो इस द्रव्यसे क्या बनता है ? यदि अब विलम्ब हुआ तो मैं तुमको शापाग्निसे भस्म कर दूँगा, अभी एक प्रहर दिन बाकी है, इतने ही समयमें आप उस धनको पूर्ण कर दें। इस तरह कहकर ऋषि चल दिये, अब राजा धर्मकी कठोरातिकठोर परीक्षा पार करनेकी घाटीपर पहुंच गए। मनमें विचारते हैं, स्त्री, पुत्र बेच चुका हूं, केवल यह शरीर बाकी है, इसको बेचकर जो धन होगा वह ऋषिको अर्पण किया जायगा, यह निश्चयकर * आत्म-विक्रयके लिए नगरमें जैसे धनियोंसे पुकार करने लगे, तैसे तत्काल वहां क्या देखता है, एक मलीन वस्त्रधारी विरूप और भयानक दन्तनखी, श्वानोंको साथ दुर्गंधिसे आच्छादित व्यक्ति खड़ा होकर जो स्वयं अपना परिचय दे रहा है, कि मैं "यहां प्रेतोंके वस्त्रोंका देनेवाला मुख्य चाण्डाल हूं मुझे बहुमूल्यसे मनुष्योंकी आवश्यकता रहती है, मैं तुमको मूल्य देकर लेता हूं"। इस प्रकार उस चाण्डालके वाक्य सुनकर राजा अपने आपको धिक्कार देता हुआ

---

* जब एक बेर प्रतिज्ञा हो गई अब उससे च्युत होना कुलपर कलंक लगाना समझते हैं ठीक है :—

वचनं महाजनानामम्भः सरितां दशा च देहानाम्।
एतत्त्रयमिह लोके न प्रत्यावर्तते जातु॥

सज्जनोंके वचन, शरीरकी दशा, गंगाका प्रवाह जो आगे निकले, फिर पाछे नहीं मुड़ते हैं।

कहता है, "अहो, चाण्डालके दासत्वकी अपेक्षा शापाग्निसे भस्म होना ही क्या श्रेयस्कर कर्म होगा, नहीं नहीं" यह कह ही रहा था, कि इतने ही में विश्वामित्र उपस्थित हो गये, और बोले—कि "विपुल धनसे जब यह तुमको मोल लेता है, तो विलम्ब मत करो"। ऋषिके इस वचनपर राजा बोला, प्रभो ! यह शरीर सूर्यवंशसे उत्पन्न हुआ है। एकमात्र द्रव्यके लोभसे चाण्डालका दास होना उचित नहीं मालूम देता, मैं आपकी शरण हूं, इस आपत्तिसे रक्षा कीजिये। यह शरीर आपके चरणोंमें ही समर्पित है। यह सुन ऋषि बोले— अस्तु, जब तुमने अपना शरीर मेरे अर्पण कर दिया, तो मैंने भी विपुल धन लेकर तुम्हें चाण्डालके पास बेच दिया, अब तुम्हारा कोई वक्तव्य शेष नहीं है। चाण्डालने विश्वामित्रको उसका मूल्य सौंप दिया। अब राजा चाण्डालका सेवक होकर उसका अनुयायी हुआ, अपने मनमें स्त्री और पुत्रके वियोगसे व्याकुल होता हुआ कहता था, "वह दीना अश्रुपूर्णमुखी बाला मेरी प्रतीक्षा करती होगी कि राजा हमारी सुध लेगा" इस प्रकार मनमें विलाप करता हुआ, हाय, दैव ! * राज्यका नाश, मित्रोंका वियोग, स्त्री-पुत्रका विक्रय करनेपर भी चाण्डालका दास बनना पड़ा ! अब चाण्डालने राजा को श्मशान भूमिकी सेवामें नियुक्त किया। राजा श्मशानमें पहुंचा, जहाँ चारों ओरसे दुर्गन्धिमय धूम भबक रहा है, भयानक

---

* क्षते प्रहाराभिपतन्त्यभिक्ष्णम्।

कठिन दशाके आने पर दुःखमें दुःख आता है और चोट पर चोट लगती है।

शव-कलेवरोंका मन्दिर बना हुआ है, विशीर्ण प्रेतोंकी दन्तपंक्ति मानो सांसारिक जीवोंकी दशा पर उपहास कर रही है; इस अवस्थामें शोकसंतप्त हो राजा कहने लगा :—

हा भृत्याः मन्त्रिणो विप्राः क्व तद्राज्यं विधेः गतम्।
हा शैव्ये पुत्र हा बाले मां त्यक्त्वा मन्दभागिनम्॥६॥

हा भृत्य, मन्त्रीगण ! पुत्र ! हा ! शैव्ये ! मुझ हतभागी को परित्यागकर तुम कहां गये हो ॥ ६ ॥

इस प्रकार शोक करता हुआ, चाण्डालकी आज्ञासे श्मशानमें निर्दिष्ट सेवा करता था। एक दिन श्रान्तिवश जब राजाको निद्रा आई, निद्रामें एक भयानक स्वप्न देखा, तत्काल जागकर साथी चाण्डालोंसे पूछता है। क्या १२ वर्ष मुझे यहां बीत गए हैं, उन्होंने कहा नहीं-नहीं ? तब राजा स्वप्नसे व्याकुल हो परमेश्वरकी शरण लेकर शङ्कटमोचन स्तुति करने लगा :—

"स्वस्ति कुर्वन्तु भो देवाः शैव्याया बालकस्य च।
नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ॥७॥
पारावाराय शुद्धाय पुराणायव्ययाय च।
नमो बृहस्पते तुभ्यं नमस्ते वासवाय च"* ॥८॥

इस प्रकार भगवान्की प्रार्थना करके फिर चाण्डाल वेशमें

* विपत्तिमें इसके पाठ करनेसे संकट दूर होता है।

फिरने लगा, कुछ ही समय बीता होगा, कि राजपत्नी साँपके काटने से मृत पुत्रको गोदमें लेकर वहां पहुंची। "हे वत्स, हाय दैव !" विलाप करती हुई, शिरको भूमिसे पटक रही थी, हाथोंसे वक्षस्थलको तोड़ती हुई, हृदयविदारक आर्तनाद करती हुई कहती है,—हे राजेन्द्र ! हाय जिस बालकको आप पृथ्वीपर क्रीड़ा करते हुए छोड़ आये थे, वह आज कराल सर्पके दंशसे मुझ दुःखिनीको घोरातिघोर शोकानलमें छोड़कर मृत हो गया है। इस तरह विलापिनीके शब्द सुन हरिश्चन्द्र शीघ्र उस ओर गया, मलीन वस्त्रावृता महिषीको न पहचान सका, राजपत्नी भी शुष्कवृक्षके समान एवं धूलिधूसरांग पटच्चरधारी वेशमें शोककी दशा पर राजाको न पहिचान सकी। हाय दैव ! पति पत्नीको नहीं पहिचानता, पत्नी पतिको नहीं; क्या घोर दशा थी, जब राजाने कम्बलमें लपेटे हुए, राजचिह्नयुक्त उस बालकको देखा, और कहने लगा, यदि कराल कालका कवल न हुआ हो तो ऐसी आकृतिका मेरा पुत्र रोहिताश्व भी था। इतना सुन इधर रानी शोकार्त हो विवश चिल्लाने लगी। हा वत्स, हे-नाथ ! किस घोर शोकसागरमें तुम मुझे डाल गए हो, बड़े दुःखसे अर्द्धनिःश्वास लेकर रानी बोली :—

"राज्यनाशं सुहृत्यागो भार्यातनयविक्रयः।
हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेः किं विधे न कृतं त्वया"॥६॥

हे दैव ! हरिश्चन्द्रके लिये तूने क्या नहीं किया ॥ ६ ॥

यह सुनकर राजाको ज्ञान हो गया, कि यह मेरी राजपत्नी है,

और यह वही राजपुत्र रोहिताश्व है, पति-पत्नीको परस्पर उस समय जो क्लेश हुआ उस दशाके प्रकट करनेमें पाषाण हृदय भी क्यों न हो, तब भी विदीर्ण हो जायगा, मनुष्यके कोमल हृदयकी तो क्या कथा है, लेखनी नहीं उठती, रोमांच होकर हृदय विदीर्ण होता है। किन्तु सहस्रशः मुखसे धन्य है, महाराज हरिश्चन्द्रके धैर्यकी असीम मर्यादा को। निदान अत्यन्त शोकाकुलित हो दोनों मूर्च्छित होकर भूमिमें गिर पड़े, कुछ देरमें राजाको चेतना आई, अब उस दारुण शोक घटनाको देख पति-पत्नी परस्पर मन्त्रणाकर चितामें बैठनेको उद्यत हुई, जैसे चिता बना कर रोहिताश्वको गोदमें ले भगवान्का ध्यानकर अग्नि देनेको तैयार हुई थी, कि धर्मदेव साक्षात् वहां पर उपस्थित होकर बोले, धन्य-धन्य हरिश्चन्द्र ! अब तुम सत्य और धैर्यकी उच्च परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये हो, हे महाभाग ! तुमने सनातन लोक जीत लिए। तत्काल इन्द्रका भी वहां पर साक्षात् हुआ। रोहिताश्वको अमृत सिंचनसे संजीवित कर इन्द्र बोला, महामते, धर्मज्ञ, हरिश्चन्द्र ! आपके लिये स्वर्गके द्वार खुल गये हैं, वहां विराजिए, हरिश्चन्द्र धर्म और इन्द्रको प्रणाम कर और अपने संजीवित पुत्र रोहिताश्वसे परस्पर मिल प्रेमाश्रुसे वियोगाग्निको शमित कर बोला, देवराज ! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे स्वर्गीय गति प्रदान करते हैं, तो कौशलके लोग जो मेरे वियोगजन्य शोकसे सन्तप्त हैं, उनको भी मेरे साथ स्वर्ग जानेकी आज्ञा दीजिए। क्योंकि :—*

* हीनसेवा न कर्तव्या कर्तव्यो महदाश्रयः।

"ब्रह्महत्या गुरोर्घातः गोवधः स्त्रीवधस्तथा ।
तुल्यमेभिः महापापं भक्तत्यागे विधीयते" ॥१०॥

अर्थात् ब्रह्महत्या, गोवध, स्त्रीवधके समान पाप अपने सेवकके छोड़नेमें है ॥ १० ॥

इन्द्र बोले, राजन्! प्रत्येक व्यक्तिके शुभाशुभ कर्म पृथक्-पृथक् होते हैं, उनके अनुसार उनको स्वर्ग नरकादि भोगना पड़ता है, यह सुन हरिश्चन्द्रने कहा, राजा जो कुछ शुभाशुभ कर्म करता है, वह मन्त्री, भृत्य, प्रजाकी सहायता तथा कुटुम्बियोंके साथ करता है। मेरे शुभ कर्म करनेमें जैसे वे सहायक थे, उसी तरह उस कर्मके फल भोगनेके भी वे अधिकारी हैं, या बहुत दिन भोग करनेके योग्य जो स्वर्ग फल मुझको आप देते हैं, उसको सबके साथ मिल कर हम सब एक ही दिन भोग करें, वह श्रेष्ठ है, किन्तु आप ही आप स्वर्ग सुख भोगनेके लिए उन भक्तोंका संग त्यागना मेरे लिए अत्यन्त स्वार्थपरायणता और निन्दनीय कर्म है। राजाके इन धार्मिक और भक्तवत्सलताके वचनोंको सुनकर इन्द्रने प्रसन्न हो स्वीकार किया, तत्काल धर्म और विश्वामित्र अनेक विमानोंको लेकर वहां आये, उनकी आज्ञासे रोहिताश्वको विधिपूर्वक राज्यतिलक दिया, नगरमें मंगल वाद्य बजने लगे। इस उत्सवके अनंतर हरिश्चन्द्र सत्यनिष्ठका आदर्शचरित्र भूलोकमें छोड़कर अपने प्रिय भक्तोंके साथ स्वर्गको पधारे, आकाशमें दुन्दुभी आदि वाद्य

बजे, पुष्प वृष्टि होने लगी, शुक्राचार्य प्रसन्न होकर सत्य-प्रिय राजा हरिश्चन्द्रकी प्रशंसा करने लगे :—

हरिश्चन्द्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति।
यः शृणोति सुदुःखार्तः स सुखं महदाप्नुयात्॥११॥

हरिश्चन्द्रके समान सत्य-प्रिय तथा धर्मवान् कोई भी राजा न हुआ है, न होगा। जो अति दुखी भी मनुष्य इस पवित्र चरित्र को सुनेगा, सम्पूर्ण सुख प्राप्त होगा॥ १ ॥

नोट—जेहि राख्यो निज धर्मको, तेहि राख्यो कर्तार।
धर्मो रक्षति रक्षितः।

अस्तेयशिक्षा

(मागृधः कस्यचिद्धनम्)

किसी वस्तुको जिस पर अपना स्वत्व (हक) नहीं है, उसको छलसे, या बलात्, या अविचारसे जो प्राप्त करना है, वह भी स्तेय है।

मनुष्यको प्रत्येक दशामें जब कभी किसी वस्तुके लेनेकी आवश्यकता मालूम हो, तब यह विचार लेना चाहिये, कि इस वस्तु पर मेरा स्वत्व है, या नहीं, जिसपर अपना स्वत्व न हो उसे कदापि ग्रहण न करे। अन्यायप्राप्त और अनधिकारप्राप्त धन प्रथम तो इस जीवन ही में व्यवहारसे उसकी दुर्दशा कर देते हैं, यथा कथंचित् यह भेद छिपा भी रहे तो परलोकमें तत्काल वह दण्डभागी होता है, इच्छादेवीके प्रबल ताण्डवनृत्यसे आपातालमूल धैर्यद्रुम भी विचलित हो जाते हैं, तब धैर्यलेशावशेष शिश्नोदरपरायण स्वार्थान्धकार व्यक्तियोंकी कथा ही क्या है।

जब तक अन्याय या अनधिकार प्राप्त धन लेनेकी इच्छासे अत्यन्त उपराम न हो जाय, तब तक वह मनुष्य पशुपाशमें जकड़ा हुआ है, परमात्माकी इस लीलामय संसाररूपी रंगभूमिमें मनुष्याकृतिके विकल पुच्छ द्विपद पशु और दैत्य-दानव सब अपनी अपनी आकृतिके अनुकूल उत्तर परिणामको न देखकर :—

यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिवेत् ।

इस प्रकारके संगीतोंमें मस्त होकर गाढान्धकारिणी अमावास्या की निशीथिनीमें नृत्य कर रहे हैं, इसी नाट्यशालामें सुप्रकाशसे विभावित वास्तविक मनुष्य भी वैठे हुए हैं। इस तरहके संकीर्ण रंगभूमिके पात्रोंका परिचय दाम्भिक तिर्छे कुटिल नरपशु कव समझ सकते हैं, प्रथम तो मनुष्य जाति मात्रका यह एक सामान्य धर्म है, कि किसी वस्तुको अनधिकार प्राप्त न करे, भारतवर्षीय धर्मशास्त्रोंमें तो व्यवहार दण्डके अतिरिक्त इसको धर्मशास्त्रानुसार पतित होना भी समझा जाता है।

इस पर महाभारतान्तर्गत शंख, लिखितका इतिहास देखनेके योग्य है। शंख और लिखित ये दो भाई हुए, परस्पर दायविभाग होनेके अनन्तर एक दिन लिखित अपने ज्येष्ठ भ्राताके आश्रमपर गया, शंख उस समय घरपर न था। लिखितको उसकी प्रतीक्षा में अधिक समय लगनेसे क्षुधा सताने लगी, इधर उधर देखता है, समीप ही बाटिका थी, वहां मृदु और मधुर फलोंसे बृक्ष ठसाठस भरे हुए थे, क्षुधाका वेग इसको सता ही रहा था, जिसपर बाल्या-वस्थाकी चञ्चल प्रकृति। बस यह विचार न सका, कि इस जगहके फल लेनेमें मेरा अधिकार अब है या नहीं, निदान कुछ फल खाकर क्षुधाको शान्त किया, कुछ रख दिए, इसी बीच शंख भी अपने आश्रममें पहुंचा। लिखितने प्रेमपूर्वक अवशिष्ट स्वादु फल उसको अर्पण किए। फलोंको देख शंखने लिखितसे पूछा प्रिय भ्रातः! इन फलोंको तुम

कहांसे लाये हो, उसने उत्तर दिया कि सामने जो आपकी वाटिका है, उसमें से लाया हूं। यह सुन शंखने कहा भाई तुमसे इस प्रकार अनुचित कर्मकी आशा नहीं थी, यद्यपि मेरा जो है, वह तुम्हारा है, तुम्हारा जो है, वह मेरा है, किन्तु जब हम परस्पर विभक्त हो गए हैं, अब बिना स्वामीकी अनुमतिसे जो फल तुमने लिए हैं, यह अत्यन्त अधर्म किया है। इससे अब तुम प्रायश्चित्तके योग्य हो। अतः आत्मशुद्धिके लिये राजाके पास जाकर निवेदन करो कि हे धर्मज्ञ! मैंने चोरी की है, आप मुझे उसका दण्ड देकर पवित्र करो, जिससे दूसरे जन्ममें फिर पापका फल न भोगना पड़े। क्योंकि :—

"राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा"॥१॥

राजाने जिस अपराधीको दण्ड दे दिया हो, वह शुद्ध होकर स्वर्गमें निवास करता है ॥ १ ॥

भाईके उपदेशानुसार लिखित सुद्युम्न राजाके पास गया, और अपने कर्मको यथावत् निवेदन किया। राजाने उत्तर दिया, जो कुछ मेरे योग्य और सेवा हो उसे कहो, जो ऐसे सत्यवादीके साथ मुझे करना भी उचित है। लिखित एक न माना। निदान धर्मशास्त्रीय निर्णयानुसार सुद्युम्नने लिखितके दोनों हाथ कटवा दिए। लिखित इस परिपाकको पाकर अपने भाईके पास वापस आया और प्रणाम कर बोला भ्रातः "मैंने अपने दुष्कृत्यका फल पालिया, इसलिए अब क्षमा कीजिए, शंखने उत्तर दिया, ब्राह्मणको चौर्य करनेके अतिरिक्त

और क्या पाप है। तुमने धर्मका अतिक्रमण किया था। इसलिए इसका प्रायश्चित्त ही यह है, अब विपत्ति पर धैर्य रखना ब्राह्मणकी पहिचान है। अच्छा तुम बाहुदा नदीके पास जाकर शान्त मनसे भगवती बाहुदाका पूजन करके अपने अनुचित कर्मपर पश्चात्ताप करो, और देवर्षियोंके तर्पणकर यह कहना, हे भगवति ! अब इस प्रकार अनुचित कर्म मैं नहीं करूँगा, क्षमा कीजिए। भाईकी आज्ञानुसार उसने वैसा ही किया, ज्यों ही जलमें बाहु डाले, त्यों ही उसके दोनों हाथ लग गये, आश्चर्यमें आकर अपने भाईको हाथ दिखाने लगा। और बोला हे धर्मज्ञ भ्रातः ! तुमने पहिले ही मुझे पवित्र किया। शंखने उत्तर दिया मेरा इतना ही काम था, दण्ड देना राजाका ही अधिकार है, इस धर्मयुक्त न्याय दण्ड देनेसे तुम और राजा दोनों पुण्यके भागी हैं, राग द्वेषसे जो राजाकी दण्ड नीति है, राजाको नरकमें डालनेवाली और वंशनाशकारी है। राग, द्वेष छोड़कर न्यायनिष्ठावाली दण्डनीति राजाके लिये स्वर्ग-सोपान है।

मानवतत्त्वशिक्षा

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥१॥
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥२॥
श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥३॥
योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः।

ऋग्, यजु, साम, अथर्वण चारों वेद और वेदानुकूल स्मृति स्वभाव और आचार तथा सज्जनोंके मनकी प्रसन्नता, ये सब धर्मके कारण हैं ॥१॥

वेद तथा धर्मशास्त्रके कहे हुए धर्मका आचरण करता हुआ मनुष्य इसलोकमें यशको परलोकमें अत्यन्त सुखको प्राप्त होता है ॥२॥

वेदको श्रुति और धर्मशास्त्रको स्मृति कहते हैं, वे दोनों सम्पूर्ण प्रयोजनोंमें प्रतिकूल तर्कोंसे विचारनेके योग्य नहीं हैं, क्योंकि सब धर्म उन्हींसे प्रकाश हुए हैं ॥३॥

जो द्विज धर्ममूल श्रुति और स्मृतिका अपमान करता है,

स शूद्रवद्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥४॥

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥५॥

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥६॥

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥७॥

वह वेदकी निन्दा करनेवाला नास्तिक शूद्रके समान वेदाध्ययनादि द्विजोंके धर्मसे पृथक् करने योग्य है ॥४॥

वेद, स्मृति और शुभाचरण और अपनी सन्तोषजनक वस्तु यह चार प्रकारका साक्षात् धर्मका लक्षण है ॥५॥

इस भारतवर्षमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंसे पृथिवीमें सम्पूर्ण मनुष्य अपने-अपने चरित्रोंको सीखें ॥६॥

वेद पढ़नेसे और मद्यमांसादि वर्जित करनेसे, होमसे, त्रैविद्य नामक व्रतसे, ब्रह्मचर्यावस्थामें देवर्षि पितृ तर्पणादि योगसे, पुत्र पैदा करनेसे, ब्रह्मयज्ञ प्रभृति पांच महायज्ञोंसे, ज्योतिष्टोमादि यज्ञोंसे यह शरीर ब्रह्मप्राप्तिके योग्य किया जाता है ॥७॥

ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा ।
स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते ॥८॥
आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ।
आचारेण तु संयुक्तः संपूर्णफलभाग्भवेत् ॥९॥
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥१०॥
न जातु कामकामानामुपभोगेन शाम्यति ।

ब्राह्मण सब कालमें वेदाध्ययनके आरम्भमें तथा समाप्तिमें ॐकारका उच्चारण करे, जिसके आदिमें ॐकार नहीं उच्चारण किया जाता, वह शनैः शनैः नष्ट हो जाता है और जिसके अन्तमें नहीं किया जाता, वह भी विस्मृतिको प्राप्त हो जाता है ॥८॥

श्रुति और स्मृतिसे कहा हुआ आचार परमधर्म है, आचारवान् मनुष्य सम्पूर्ण फलका भागी होता है ॥९॥

अति भोजन अरोग्यता और आयुको नाश करनेवाला है, और स्वर्गके कारणभूत यज्ञादिकोंका विरोधी होनेसे स्वर्गका भी नाश करनेवाला है, पापरूप है और लोकमें निन्दित है। इससे अति भोजनका त्याग करे (अर्थात् बहुत कभी न खावे) ॥१०॥

अभिलाषाका वेग स्रक्, चन्दन तथा कामिनी आदिके उपभोग

हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥११॥
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥१२॥

श्रुत्वा दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वातु यो नरः ।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥१३॥

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।
तेनास्य क्षरते प्रज्ञा दृते पात्रमिवोदकम् ॥१४॥

से कभी भी शांत नहीं होता है, घृतादि देनेसे अग्नि जैसा अधिक अधिक बढ़ता जाता है ॥११॥

वेद, दान, यज्ञ, नियम, तप आदि कर्म, विषयोंको सेवन करने वाले पुरुषको कभी सिद्धिको प्राप्त नहीं होते ॥१२॥

सुनकर, देखकर, स्पर्श कर, खाकर, सूंघकर जो मनुष्य प्रसन्न नहीं होता है और खेदित भी नहीं होता है, उसको जितेन्द्रिय जानना चाहिए ॥१३॥

सब इन्द्रियोंमें जो एक इन्द्रिय भी विषयोंमें लिप्त हो जाय, तो विषयोंमें लगे हुए इस मनुष्यके दूसरी इन्द्रियोंसे भी तत्त्व-ज्ञान ऐसे जाता रहता है, जैसे चर्मके जलपात्रसे जल टपकता जाता है ॥१४॥

वशे कृत्येन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा।
सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस्तनुम् ॥१५॥
न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिः कार्यः सर्वस्मिन् द्विजकर्मणि ॥१६॥
नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः।
जानन्नपि च मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ॥१७॥
उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।

इन्द्रियसमूहको वशमें करके और मनको संयम कर अपनी देहको पीड़ा न देता हुआ सम्पूर्ण अर्थोंको भली भांति साधन करे ॥१५॥

जो प्रातःकालकी सन्ध्या नहीं करता और पिछली अर्थात् सायं सन्ध्या भी नहीं करता है, वह शूद्रके समान सब द्विजातियोंके कर्म और सत्कारसे बाहर करने योग्य है ॥१६॥

बिना पूछे किसीसे भी न कहे और भक्ति, श्रद्धा आदि जो पूछनेके धर्म हैं, उनको छोड़कर जो पूछे ऐसेके पूछने पर या अन्यायसे पूछने पर भी न कहे बुद्धिमान् पुरुष जानता हुआ भी अनर्थ कहनेमें गूंगेके समान रहे ॥१७॥

दश उपाध्यायोंकी अपेक्षा एक आचार्य और शत आचार्योंकी

सहस्रेण पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥१८॥
उत्पादकब्रह्मदात्रे गरीयान् ब्रह्मदः पिता ।
ब्रह्म जन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥१९॥
विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मनः ॥२०॥
अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोनुशासनम् ।
वाक्चैव मधुराश्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता २१॥

अपेक्षा एक पिता और पितासे सहस्र गुण अधिक माता पूज्य है ॥१८॥

उत्पन्न करनेवाला और वेद पढ़ानेवाला ये दोनों पिता हैं, इनमें आचार्य पितासे श्रेष्ठ हैं, क्योंकि ब्राह्मणका ब्रह्मजन्म ही इस लोक तथा परलोकमें सदा मोक्षरूप फलका देनेवाला होता है ॥१९॥

ब्राह्मणोंकी ज्ञानसे ज्येष्ठता होती है और क्षत्रियोंकी बलसे और वैश्योंकी धन-धान्यसे, और शूद्रोंकी जन्मसे श्रेष्ठता होती है ॥२०॥

शिष्योंको हिंसाके बिना ही कल्याण देनेवाले अर्थकी शिक्षा करनी चाहिए और धर्मबुद्धिकी इच्छा करनेवाले पुरुषकी प्रीति उत्पन्न करनेवाली वाणी (शब्द) कहनी चाहिए ॥२१॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदानन्यत्र कुरते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयम् ॥२२॥
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोवधीत् ॥२३॥
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेप्यनुयाति यः ।
शरीरेश समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति ॥२४॥

जो द्विज वेदको न पढ़ कर दूसरे शास्त्रोंमें श्रम करता है, वह जीता हुआ पुत्र, पौत्रादिकों समेत शीघ्र शूद्रत्वको प्राप्त होता है ॥२२॥

अतिक्रमण किया हुआ अर्थात् न माना हुआ धर्मही इष्ट, अनिष्ट समेत नाश कर देता है और वह धर्म पालन किया हुआ इष्ट अनिष्टों समेत रक्षा करता है, तिससे धर्मका अतिक्रमण न करना चाहिए। अतिक्रमण किया हुआ धर्म तुम समेत हमको न मारे ॥३२॥

धर्म ही एक मित्र है, जो मरनेके समय भी वांच्छित फल देनेके लिये साथ जाता है और सब स्त्री, पुत्र आदि शरीर ही के साथ नाश को प्राप्त होते हैं। इसलिए पुत्र आदिकोंके स्नेहकी अपेक्षा धर्म न छोड़ना चाहिए ॥२४॥

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षि लोकान्नाप्नोति पुष्कलान्।
इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता ॥२५॥
जन्म प्रभृति यत्किंचित्पुण्यं भद्र त्वया कृतम् ।
तत्ते सर्वं शुनो गच्छेद् यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा ॥२६॥
सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥२७॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिता प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥२८॥

साक्षी सत्य कहता हुआ उत्तम लोकोंको प्राप्त होता है और इस लोकमें भी उत्तम यशको प्राप्त होता है। यही वाणी ब्रह्मासे भी प्रशंसित है ॥२५॥

न्यायाधिकारी साक्षीको कहे—हे भद्र ! तुम जो मिथ्या कहोगे तो जन्मसे लेकर जो तुमकने पुण्य किये हों, वह सम्पूर्ण कुत्तोंको प्राप्त हों। अतः पूछने पर कभी असत्य न कहे ॥२६॥

सर्वदा सत्य और मीठी वाणी कहे। जो वाणी अप्रिय लगे, वह सत्य भी हो तो भी न कहे और मिथ्या वाणी प्रिय भी हो तो भी न कहे। यह नित्य धर्म है' ॥२७॥

आचारसे आयु बढ़ती है और आचार ही से चाही हुई सन्तति प्राप्त होती है तथा आचार ही से नाश न होने वाले (नित्य) धनकी प्राप्ति होती है। आचार ही निन्दित लक्षणोंको दूर करता है ॥२८॥

सर्वं परवशं दुखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयो ॥२६॥
नास्तिक्यं वेदनिन्दा च देवतानां च कुत्सनम् ।
द्वेषो दम्भश्च मानञ्च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत् ॥३०॥
यमान् * सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः ।
यमान्पतत्य कुर्वाणः केवलान्नियमान्भजन् ॥३१॥
वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च ।

सम्पूर्ण दुःख पराधीन होने पर हैं और सम्पूर्ण सुख स्वाधीन होनेसे हैं। संक्षेपसे सुख-दुःखके इन लक्षणोंको समझो ॥२६॥

नास्तिकता अर्थात् (परलोक नहीं है, ऐसी बुद्धिको) वेदकी निन्दाको तथा देवताओंकी निन्दा, द्वेष, दम्भ, अहङ्कार, क्रोध और क्रूरकर्मको छोड़ देवे ॥३०॥

इन्द्रियोंके दमनको यम कहते हैं। बुद्धिमान् नित्य यमका सेवन करे, यमोंके बिना नियमोंका सेवन न करे। केवल नियमोंका सेवन करता हुआ और यमों पर ध्यान न देता हुआ नरकगामी होता है ॥३१॥

निरन्तर वेद पढ़नेसे, शौचाचारसे, तपस्यासे, प्राणियोंकी हिंसा

* अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये यम हैं। शौच, सन्तोष तप, स्वाध्याय, ईश्वर, प्रणिधान ये नियम हैं।

अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्वकीम् ॥३२॥
बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥३३॥
अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥३४॥
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः ।
महन्ति पातकान्याहुः संसर्गाच्चापि तैः सह ॥३५॥

न करनेसे पूर्व जन्मकी जातिको जान लेता है ॥३२॥

राजा बालक भी हो तो पूज्य है । यह मनुष्य ही तो है, इस तरह समझ कर उसका अपमान न करे, क्योंकि यह दिव्य शरीर मनुष्य रूपसे भूलोकमें टिकता है ॥३३॥

वेदोंका अभ्यास न करनेसे और श्रुति स्मृतियोंमें कहे हुए आचारको न करनेसे, आलस्यसे, कुत्सित तथा बहुत अन्न खानेसे अकाल मृत्यु ब्राह्मणोंको मारता है ॥३४॥

ब्राह्मण-वध, मद्यपान, चोरी, गुरु स्त्री-गमन इनको महापातक कहते हैं और जो महापातकियोंसे संसर्ग * रखता है, वह भी महा-पातकी गिना जाता है ॥३५॥

---

* संसर्ग देखो ३८ श्लोकमें ।

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवानि च ॥३६॥
छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् ।
पलाण्डुं गृञ्जनञ्चैव मत्या जग्ध्वा पतेन्नरः ॥३७॥
संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।
याजनाध्यापननाद्यौनान्नतुयानासनाशनात् ॥३८
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ।

लहसुन, गृञ्जन, (गाजर) प्याज, धरतीके फूल (छत्राक) और अशुद्ध विष्ठा आदि अपवित्र स्थानमें उत्पन्न हुए शाकादि ये द्विजातियोंको अभ्यक्ष हैं, शूद्रोंको नहीं ॥३६॥

धरतीका फूल, बिष्ठा खानेवाला सूअर, लशुन, ग्रामका मुर्गा, प्याज, गाजर इन सबमें किसीको जान कर खावे तो द्विजाति पतित होवे और पीछे उस पतितको प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥३७॥

यज्ञसे, पढ़ानेसे और विवाह सम्बन्धसे मनुष्य पतितोंके साथ एक संवत्सर पर्यन्त आचरण करता हुआ पतित होता है। पतितके साथ मार्ग गमन करनेसे, बैठनेसे और साथ भोजन करनेसे पतित नहीं होता ॥३८॥

दूसरेके द्रव्य लेनेमें ध्यान देना और मनसे अनिष्ट वस्तुका चिन्तन करना तथा परलोक नहीं है, देह ही आत्मा है ऐसा सोचना

वितथा विनिवेशश्च त्रिविधंकर्म मानसम् ॥३६॥
पारुष्यमनृतञ्चैव पैशून्यञ्चापि सर्वशः ।
असम्बन्धप्रलापश्च वाङ्मयस्याच्चतुर्विधम् ॥४०॥
अदत्तानामुपादानं हिंसाचैवाविधानतः ।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥४१॥
मानसं मानसैवायमुभुंक्ते शुभाशुभम् ।
वाचावाचाकृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥४२॥

इस भाँति तीन प्रकारका अशुभ फल मानस कहाता है ॥३६॥

कठोर वाणी कहना, झूठ बोलना, पराये दोषोंको देखना और राजा, देश, पुरवासियोंकी वार्ता आदिका बिना प्रयोजन उच्चावच वर्णन करना इस प्रकार चार तरहका अशुभ वाचिक कर्म होता है ॥४०॥

अन्यायसे दिये हुए द्रव्यको लेना, वेदादि शास्त्रोंसे निषिद्ध हिंसा का करना और पराई स्त्रीसे संभोग करना, ये अशुभ फल देनेवाले तीन तरहके शारीरिक कर्म हैं ॥४१॥

मन करके जो सुकृत अथवा दुष्कृत कर्म किया हो, उसका फल क्रमसे सुख दुःखरूप इस जन्ममें अथवा दूसरे जन्ममें मनसे ही भोगता है। ऐसे ही वाणीसे किया हुआ शुभ अशुभ वाणीके द्वारा मधुर, गद्गद् आदि बोलनेसे तथा शरीर सम्बन्धी शुभ अशुभ शरीर द्वारा भोगता है ॥४२॥

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः ।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्॥४३॥
वाग्दंडोथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च ।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रीदण्डीति स उच्यते ॥४४॥
वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्विकं गुणलक्षणम्॥४५॥
यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जते ।

शरीरसे उत्पन्न हुए बहुतसे दोषों (पापों) से मनुष्य वृक्षादि योनिमें उत्पन्न होता है । वाचिक दोषोंसे पक्षी, मृगोंकी योनिमें और मानसिक दोषोंसे चाण्डालकी योनिमें पैदा होता है ॥४३॥

वाणीका दण्ड, मनका दण्ड, कायादण्ड यह तीनों दण्ड जिसकी बुद्धिमें स्थित हैं, वह त्रिदण्डी कहा जाता है । केवल काष्ठके तीनों दंडोंको धारण करनेसे त्रिदण्डी नहीं होता है ॥४४॥

वेदोंमें अभ्यास और प्रजापत्य आदि व्रत करना, शास्त्रके अर्थ का ज्ञान, मिट्टी, जल आदिसे शुद्धि, इन्द्रियोंका रोकना, दान आदि धर्मोंका करना, आत्माके ध्यानमें तत्पर होना यह सत्त्व नाम गुणके कार्य हैं ॥४५॥

जिस कर्मको करके और करता हुआ तथा आगे करनेकी इच्छा

तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥४६॥
येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम् ।
न शोचयत्यसंपत्तौ तद्विज्ञेयन्तु राजसम् ॥४७॥
यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् ।
येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्वगुणलक्षणम् ॥४८॥
अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात् ।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥४९॥
इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च ।

रखनेसे लज्जित होवे तो वह सब तामस कार्य हैं ॥४६॥

केवल इस लोकमें ही जिस कार्यसे बड़ी ख्यातिको प्राप्त करनेकी इच्छा हो और उस कामके फलके न होने पर भी नहीं सोचता हो, वह रजोगुणका कार्य जानना ॥४७॥

जिस कर्मसे सब प्रकारके वेदके अर्थको जाननेकी इच्छा करता है और जिस कर्मको करता हुआ तीनों कालमें भी लज्जित नहीं होता है तथा जिससे इसके आत्माको सन्तोष हो, वह सत्वगुणका लक्षण समझना चाहिए ॥४८॥

राजाके बिना जगत्को भयसे चलायमान देख ईश्वरने इस जगत् की रक्षाके लिए राजाको उत्पन्न किया है ॥४९॥

इन्द्र, पवन, यम, सूर्य, वरुण, चन्द्र, कुबेर इन सबोंके सारभूत

चन्द्रवित्तेशयोश्चै मात्रा निर्हृत्यशाश्वती ॥५०॥
यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः ।
तस्तामादभिभवत्त्येष सर्वभूतानि तेजसा ॥५१॥

अंशोंको खींचकर ईश्वरने राजाको बनाया है ॥५०॥

जिससे इन्द्र आदि देवताओंके श्रेष्ठ अंशसे राजा उत्पन्न किया गया है, अतः सब प्राणियोंमें पराक्रममें अधिक होता है ॥५०॥

च्यवनोपाख्यानम् ।

निर्गुणेस्वपपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ॥१॥

कुलीन सज्जन साधु महापुरुषोंका यह स्वभाव है कि दूसरेको दुःखितदशामें देखकर स्वयं भी तबतक दुःखित हो जाते हैं, जबतक उसके सन्तापको दूर न करें, या कुछ अंशसे समवेदन न करें ॥ १ ॥

यह भी महापुरुषका लक्षण है कि दूसरेकी दुःखिनी दशा पर हृदयसे सहायता करनी, जिनका यह स्वभाव होता है प्रायः उनको दुःख दौर्मनस्यरूपी अनिष्ट दशा नहीं भोगनी पड़ती, दूसरेकी दुःखित अवस्था पर हँसना, मुखसे चापलूसी, हृदयमें हलाहल इस प्रकारके नर-दानव कब इस सूक्ष्म विज्ञानको समझ सकते हैं। मोक्षशास्त्र में धर्माधर्म इन्द्रके आख्यान "द्दद" यही सम्पूर्ण धर्मकी प्रसव भूमि बताई गई, अर्थात् पहली दा का अर्थ इन्द्रियोंका दमन, दूसरी द का अर्थ दया, तीसरी द का अर्थ दान यही धर्मस्कन्ध यहां दिये हैं। दया और सहानुभूति ही मनुष्यका विमल यश है और परम धर्म है, दूसरोंको दुःखित अवस्थामें देख सज्जनों का स्वभावतः चित्त दुःखित होता है और दुःखित प्राणियोंकी सहायता करनेमें वह निरंतर लग जाते हैं। दया सत्वगुण से उत्पन्न होती है। जैसे-जैसे मनुष्य दयामय होता जाता है, वैसे वैसे उसका

मानसिक बल बढ़ता जाता है और सत्त्वनिष्ठाके होनेसे पारलौकिक आनन्दके अतिरिक्त इस जीवनमें उसके अन्त:करणकी शक्ति प्रबल हो जाती है। जिस प्रकार सूर्यकी रश्मियाँ पृथ्वीसे रस आकर्षण करनेमें और प्रकाशमें बलवती होती हैं, इसी प्रकार वह भी उन शक्तियोंके द्वारा सत्त्वगुणको अपनेमें आकर्षण करता है, जिससे सदैश्वर्य दीर्घजीवनी उसमें होती है। महर्षि लोग इसी तरह अपनी सात्विकी शान्त शक्तियोंको संस्कृत तथा सम्वर्धन करके निज सत्ताके द्वारा जगतसे भी वैसी-वैसी शक्तियोंका आकर्षण करते, जिससे मानसिक सत्ता उनमें दृढ़ हो जाती थी। अभी जिस वंशका विभव जगत्में स्थिर है या स्थिर हो रहा है, उनकी जीवनीको देखिये। उस कुटुम्बके आबाल, वृद्धमें दया और सहानुभूति करनेका असाधारण गुण होगा, जिसके द्वारा वे जगत्से उन शक्तियोंका आकर्षण कर अपने असीम अभ्युदयको प्राप्त हो जाते हैं। इसप्र स्तावपर महर्षि च्यवनकी पुण्यरूपिनी जीवनीहै, जिन्होंने मत्स्योंको अपने आश्रम पर जाल-बद्ध देख और इधर धीवरोंको विभुक्षितदशापन्न देखकर अपने शरीरको ही मछलियोंको छुड़ानेके लिये दे दिया, जिससे इधर धीवर उस मूल्यको लेकर अपना निर्वाह कर लें और वे दीन मत्स्य भी मुक्त-बन्धन होकर स्वछन्द जलमें बिहार करें। फलतः दोनोंका कष्ट दूर हो जाय।

महर्षि च्यवन जो काम क्रोध, दम्भाभिमानादि आसुरीय सम्प्रदायके मलोंको शुद्ध कर शान्त और शिवसंकल्पमय मनसे गंगा-यमुनाके मध्यमें आसन बाँधकर तपस्या कर रहे थे। एक समय

बुभुक्षित, दीन धीवर अपने कुटुम्बकी आजीविकार्थ मत्स्य पकड़नेको जाल ले उस स्थान पर आये। जैसे ही उन्होंने जलमें जाल डाला कि कुछ मत्स्योंके साथ च्यवन भी उसमें जकड़ गए, जिससे जाल भारी हो गया। यथा-तथा जलके ऊपर उन्होंने जाल खींचा, तो क्या देखते हैं कि मत्स्योंके साथ सिद्धासन बाँधे हुए समाधिस्थ एक तपोमूर्ति भी उसमें आ गयी है।

महात्माको देख धीवर भयभीत हुए। नम्रताके साथ प्रणाम कर उन्होंने प्रार्थना की—हे प्रभो ! हमारे अपराधको क्षमा कीजिए और जो कुछ आज्ञा आप दें. हम उस सेवाको करनेके लिये उपस्थित हैं तथा अज्ञानतासे जो पाप हमने किये हैं, उनको क्षमा कीजिये। तपस्विन् ! आज्ञा दीजिए—जिस कर्मके करनेसे आप प्रसन्न हों। धीवरोंकी ऐसी प्रार्थना सुन कर और मछलियोंकी दशा देखकर ऋषि बोले—प्यारे धीवरों ! चाहे इन मत्स्योंके साथ बिक जाऊँ या जीवनीको शान्त कर दूं, किन्तु इन निरपराधिनी मछलियोंका साथ नहीं छोड़ सकता, क्योंकि दुःखित प्राणियोंको देख कर जो स्वयं दुःखी नहीं होता और केवल अपने ही सुखकी इच्छा करता है, उससे बढ़कर कौन पापी है। अहो आश्चर्य है आत्मज्ञाननिष्ठ, तपस्वी लोग भी अपने ही कल्याणके लिये तत्पर रहें और दुःखियों की दशा देखकर उनके दुःख दूर करनेकी चेष्टा न करते हों, तो क्या वह तपस्या है, नहीं व्यर्थ है। हाय ! शक्तिमान् होकर भी दीन दुःखियोंसे सहानुभूति प्रकट न करे तो पशु और मनुष्यकी जीवनीमें

अन्तर ही क्या रहा, पुत्र दाराका प्रेम तो पशुओंको भी स्वार्थवश तथा अविवेकसे होता ही है।

ज्ञानिनोऽपि यदा स्वार्थं निश्चिन्त्य ध्यानमाश्रिताः।
सत्वाः संसारदुःखार्ताः कं यान्ति शरणं तदा ॥२॥

ज्ञानी लोग भी यदि स्वार्थपरायण होकर केवल ध्यानावस्थित हो जायँ और दुःखियोंकी दशा पर विचार न करें तो दुःखी फिर किसकी शरण जायँ ॥ २ ॥

इतना कहकर पुनः ऋषि बोले कौन ऐसा उपाय होगा जिससे इन दुःखित मछलियोंकी सहायताके लिये दुःख उठाऊँ हाय! कोई बिना जलके तड़फ-तड़फ कर जमीनमें गिरती है, कोई सूर्य की प्रखर रश्मियोंसे सन्तप्त होकर तड़फड़ा कर आत्मोत्सर्ग कर रही हैं, कोई दीर्घ निःश्वाससे असह्य वेदना दिखा रही है, इस प्रकार मछलियोंकी दुःखित दशा देख कर पुनः करुणामय हो बोलने लगेः—

दृष्ट्वान्धबधिरान् व्यङ्गाननाथान् रोगिणांस्तथा।
दया न जायते येषां तेषां ते शोच्याः मूढचेतनाः॥३॥

अंधे, वधिर, अंगहीन, रोगियोंकी दशा देख कर जिनको दया नहीं आती है, वे मनुष्यगणनामें नहीं है ॥ ३ ॥

प्राणसंशयमात्मानं यो न रक्षति शक्तिमान् ।
सर्वधर्मबहिर्भूतः स पापां गतिमाप्नुयात् ॥४॥

जो शक्तिमान् होकर भी सन्देहावस्थामें गिरे हुए प्राणियोंकी रक्षा नहीं करता वह पापी धर्मच्युत है ॥ ४ ॥ दुःखियोंके दुःख छुटानेसे जो आनन्द होता है उस सुखके स्वर्ग अपवर्ग सोलहवीं कलाको नहीं पहुँच सकते इसलिये इन दीन दुःखी मछलियोंको छोड़ कर मैं ब्रह्मपदको भी नहीं जाना चाहता हूं कि फिर स्वर्ग तो क्या है इधर तुम्हारी भी आशा भंग नहीं करना चाहता हूं। क्योंकि तुम्हारी यही आजीविका है। अतः तुम राजाके पास जाकर निवेदन करो कि राजा मुझे मुल्य देकर लेलेवें उस मूल्यको तुम ले लेना और इन मछलियों को जलमें छोड़ देना, अन्यथा तुमको पाप होगा। धीवर ऋषिकी आज्ञासे राजा नहुष के पास गये राजा सम्पूर्ण वृत्तांत सुन सुनकर आश्चर्ययुक्त हुआ और इस तरह अद्भुत मूर्ति जानकर स्वयं ऋषिके दर्शनार्थ उस स्थान पर गया जहां वह महात्मा ध्यानावस्थित रहते थे तपोबलके प्रभावसे देदीप्यमान कान्तिमय शरीरवाले एकाग्र ध्याननिष्ठ महात्माको नम्रतासे राजाने प्रणाम कर सविनय कहा, प्रभो! धन्य आजके पुण्यमय दिनको आज्ञा कीजिये जो मेरे योग्य सेवा हो। यह सुन ऋषि बोले—"हे राजसत्तम ! ये धीवर जो बड़े दुःखसे अपना आजीवन करते हैं, इनके इस समयके परिश्रम पर आप मेरा मूल्य इनको देकर मुझको खरीद लीजिए। यदि

आप मूल्यदानसे मुझे न लोगे तो मैं अपने प्राण इनको अर्पण कर दूंगा, क्योंकि मैंने यह निश्चय कर लिया है कि अपने आपको विक्रय कर वह मूल्य इनको प्रदानकर इन दीन मछलियोंकी प्राणरक्षा करूँगा।" ऋषिके ऐसे वचन सुन राजाने कोषाध्यक्षको आज्ञा दी कि एक लक्ष रुपया धीवरोंको महात्माकी आज्ञासे अभी दिया जाय। यह सुन महर्षि च्यवन बोले—राजन्! एक लक्षमें किस रीतिसे तुम ने मुझे लिया है। राजाओंके मन्त्री अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता होते हैं, उनके साथ परामर्श कर उचित मूल्य दीजिये। पुनः राजाने आज्ञा दी—एक करोड़ मुद्रा धीवरोंको दिया जाय, यदि न्यून हो, तो और अधिक दो, जिससे पूज्य महर्षि प्रसन्न हों। यह सुन ऋषि पुनः बोले—अपना मूल्य आप कहना उचित नहीं है। आप निर्णय कर मूल्य दीजिये। राजा महर्षिके आदेशानुसार दुःखियोंकी सहानुभूति पर राज्य तक देनेको उद्यत था, किन्तु महर्षि उचित मूल्य दो यही कहते थे। तब राजपुरोहित और मन्त्री बैठ कर मन्त्रणा करने लगे। यदि ऋषि क्रुद्धित हो जायगा तो त्रैलोक्यको भस्म कर सकता है, फिर तपोबलरहित हमारी क्या कथा है। राजपुरोहित और मन्त्री सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ता, कुलीन, सत्यवादी होते थे। मूर्ख पुरोहित और अज्ञ, अल्पज्ञ मन्त्री भी पूर्वकालमें श्रेयस्कर नहीं समझे जाते थे। इतनेमें गविजात ऋषि जो वहाँ आये हुए थे, कहा, ब्राह्मण जगत् पूज्य होनेके कारण उनका कोई मूल्य नहीं कर सकता है और ब्राह्मणोंकी परम देवता गो है, इसलिए गोमूल्य दे ऋषिको प्रसन्न कीजिए। इस प्रकार गविजात ऋषिके वाक्य सुन राजा

बोला, हे विप्रर्षे ! उठो ! उठो, गोमूल्य देनेसे तुमको ले लिया है। हे धर्मज्ञ ! गोमूल्यसे श्रेष्ठ और तुम्हारा मूल्य पृथ्वीमें नहीं समझता हूं। यह सुन ऋषि सहर्ष बोले—हे धर्मात्मन् ! उठ गया हूं। सत्य ही गो से श्रेष्ठ कुछ धन संसारमें नहीं है। गोका पूजन, कीर्तन, श्रवण, दर्शन पापराशिको दूर करनेवाला और पुण्योंको देनेवाला है। गो लक्ष्मी स्वरूप है और निष्पाप है। इसलिए गोको यज्ञका मुख कहा गया है। गो मनुष्यको नित्य अमृत और देवताओंके लिये हव्य देती है। गो अमृतका आयतन है, अतः संसारमें पूजनीय है। गो अपने तेजस्वी शरीरसे अग्निके समान है, गो संसारमें प्राणियों को सुख देनेवाली है, गो के श्वास प्रश्वाससे वायु शुद्ध होती है। जिस देशमें गो रहती है, वह देश नित्य निर्भय और पवित्र रहता है। अतः शास्त्रमें गो स्वर्ग-सुखके प्राप्त करनेवाली कही है और स्वर्गमें पूज्य है। अतः गोसे उत्तम संसारमें कोई धन नहीं है। धीवरोंने भी गो का महात्म्य सुनकर कहा—

"संभाषा दर्शनं स्पर्शः कीर्तनं स्मरणं तथा।
पावनानि किलैतानि साधूनामिति शुश्रुमः"॥५॥

सज्जनोंसे संभाषण करना, उनका दर्शन, उनके साथ प्रेमसे मिलना, उनकी प्रशंसा करना यह पुण्यके देनेवाले हैं ॥५॥

धीवर बोले, हे महात्मन् ! हमने आपका स्पर्श, दर्शन किया है, उससे हमारे प्राप दूर हो गए, अब यह गौ हम आपको अर्पण करते

हैं, स्वीकार कीजिए। ऋषिने प्रसन्नतासे उनकी दी हुई गो ग्रहण कर कहा जो कुछ मैंने पुण्य किये हैं, उनसे सब जल-जन्तु जिनके साथ मैंने तपस्या की, वे स्वर्गको चले जावें। ऋषिके प्रसन्नचित्तसे जो आशीर्वाद निकले, उनके प्रभावसे वे धीवर मछलियोंके साथ स्वर्गको पहुंच गए और धर्ममें तत्पर हुए।

"साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवाः।
कालेन फलति तीर्थं सद्यः साधुसमागमः"॥६॥

सज्जनोंका दर्शन पुण्यदायी है, अतः सज्जन तीर्थस्वरूप हैं, तीर्थफल तो कालान्तरमें प्राप्त होता है और सज्जनोंके दर्शनका फल तत्काल ही प्राप्त होता है॥६॥

बुद्धिमान् गविज्ञात ऋषि तथा तपस्वी च्यवनने राजासे कहा, हे राजसत्तम! वर मांगो जो तुम चाहते हो। राजा बोला, हे महर्षे! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे ऐसा वर दो जिससे मेरी बुद्धि धर्ममें लगी रहे, क्योंकि धर्मसे अधिक मनुष्यको सहायता देनेवाला और कोई नहीं है। ऋषिने यह आशीर्वाद दिया, हे राजन्! तुम्हारी बुद्धि धर्ममें तत्पर रहे, संसारमें सर्वोत्तम रत्न धर्म ही है, वह नित्य तुम्हारे साथ रहे।

धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानां सह्येक एव परलोकगते सुबन्धुः। अर्थाश्रियैश्च निपुणैरपि सेव्यमानोनैवाप्तभावमुपयान्तिनचस्थिरमत्वम्॥७

तबसे राजाकी धर्ममें ऐसी निष्ठा हुई कि एक दिन अपनी राज-महिषीको इस प्रकार धर्मका उपदेश करने लगे ॥७॥

सपदि विलयमेतु राज्यलक्ष्मीरुपरिपतन्त्वथवा कृपाणधारा। अपहरतु शिरः कृतान्तो मम तु मतिर्न मनागपेतु धर्मात् ॥८॥

नीतिशास्त्र

मनुष्य जीवनकी यात्राको नीति शास्त्रका ज्ञान परम आवश्यक है। नीति इसे कहते हैं—

नस्वल्पस्य क्षते भूरि नाशयेन्मतिमान् नरः।
एतदेवात्र पाण्डित्यं यत् स्वल्पात् भूरि रक्षणम् ॥

अर्थात् एक छोटी वस्तुके लिए बड़ी वस्तुका नाश न करे। छोटी वस्तु क्या है? अपनी बुद्धिसे इसे पूर्ण विचार कर समझ ले। छोटे आनन्दके लिए बड़े आनन्दको न खोवे, यही नीतिज्ञता है कि छोटी चीजसे बड़ी वस्तुकी रक्षा करना।

नीति तीन प्रकारकी होती है।

(१) दिव्य नीति (२) मानुष नीति (३) राक्षस वा (कुटिल) अधम नीति।

दिव्य नीति उसे कहते हैं ऐसा व्यवहार करे कि चाहे अपने

आपको थोड़ा कष्ट भी क्यों न हो, पर समुदायका जिसमें हित हो वह कार्य करे।

अपनी जगहसे उखड़े हुए बृक्षको जिस प्रकार माली फिर रोपण कर देता है, ऐसे ही घरसे निकले हुए मनुष्यको उसके घर पर स्थित कर दे। खिले पुष्पोंको जैसा माली पुष्प चुनता है, छोटे बृक्षोंको बढ़ाना, बड़े ऊँचेको नीचे करना, नीचे पड़े हुएको ऊपर करना घिचपिच मिले हुओंको अलग अलग कर देना और काँटेवाले बाहर करना, मुर्झाये हुएको फिर सिञ्चन करना, मालीके काम की तरह चतुर राजा चिरंजीवी रहे। इसमें साम, दाम, दण्ड, भेद राजनीतिके चारों साधनोंको बता देता है।

'न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः, वृद्धानतेयोन वदन्ति धर्मम् ।'

वह सभा नहीं जहाँ वृद्ध नहीं, वे वृद्ध नहीं है जो धर्म पर न चलते हों, वह धर्म नहीं, जहाँ सत्य न हो, वह सत्य नहीं, जिसमें कपट हो।

यौवनं धन सम्पत्ति, प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैक मप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

असति भवति सलज्जा, क्षारं नीरं च निर्मलं भवति ।
दम्भि भवति विवेकीप्रिय वक्ता भवति धूर्त जन ।

चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा,
अर्थातुराणां स्वजनो न वन्धु ।
कामातुराणां न भयं न लज्जा,
चिन्तातुराणां न बलं न तेजः ॥

दुर्जनेन समं सख्यं, प्रीतिं चापि विवर्जयेत् ।
उष्णो दहति चांगार, शीत क्ष्मणायते करम् ॥

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥

यदिच्छे त्स्ववशी कर्तु जगदेकेन कर्मणा ।
परापवाद सस्येभ्य गां चरन्ति निवारय ॥

षट्दोषा पुरुषेणेह हातव्या भूति मिच्छता ।
निद्रा तंद्रा भयं लज्जा आलस्य दीर्घ सूत्रता ॥

अजरामरवत्प्राज्ञ विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥

माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम् ।
कार्यं कारण तश्चान्ये भवन्ति हित बुद्धय ॥

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।

ब्रह्मचर्यका तात्पर्य उस चरित्रमय जीवनके बनानेसे है, जिससे मनुष्य बलशाली होकर मृत्यु तक रोक देता है । भारतवर्षकी प्राचीन संस्कृतिका प्रभात ब्रह्मचर्यसे प्रारम्भ होता है । ब्रह्मचर्य अर्थात् वेदके अनुशासन पर जीवन-यात्राका संगठन करना । देवताओंकी परम महिमाका प्रधान कारण ब्रह्मचर्य ही है । विधिवत् ब्रह्मचर्य पालनकर विद्याभ्याससे व्यास, वशिष्ठ, पतञ्जली आदि आचार्य त्रिकालज्ञ और अनुशासक हुए हैं । नचिकेताने ब्रह्मचर्यके प्रभावसे ही यम द्वारा आत्म विद्या प्राप्त की है । ऋष्यश्रृङ्गके ब्रह्मचर्यका ही महात्म्य है कि दशरथ महाराजने राम लक्ष्मण पुत्र पाये । भीष्म पितामहने ब्रह्मचर्यके बलसे इतना गूढ़ विज्ञानका उपदेश किया और बिना सन्तति पैदा किये वे सबके पितामह सब हो गये । कार्तिक मास में स्नान कर सबको भीष्म तर्पण देनेका धर्मशास्त्रने आदेश किया है । अर्जुनको इतनी शास्त्र विद्याकी प्राप्ति और विजय होनेका सौभाग्य उसके अखण्ड ब्रह्मचर्यने ही दिया है , इस समयके नवयुवक ! ध्यान दीजिए । अर्ध रात्रिमें अर्जुनके पास षोड़श श्रृङ्गार कर उर्वशी जाती है, उस समय जब वह पूर्णयुवा और शस्त्र विज्ञान प्राप्तिके लिए इन्द्रके पास था, अर्ध रात्रिके समय पूर्णयुवा क्षत्रिय कुमार ऊर्वशीको इन शब्दोंको कहकर लौटाता है,—जिस प्रकार कुन्ती, माद्री, इन्द्राणी मेरी माता है, उसी प्रकार तुम भी मेरी माता हो ।

मात ! पुत्रपर ऐसा कोप मत करो। मेरे ब्रह्मचर्यकी रक्षाके विधानको भंग मत करो। बहुत वादानुवाद पर उसने शाप लेना स्वीकार किया, पर ब्रह्मचर्यका त्याग न किया। इस संसारमें जिसने ब्रह्मचर्यका पूर्ण पालन किया है, वह सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त कर सकता है। इस समय पुस्तक रटने पर भी जो प्रतिभा शक्तिका विकाश नहीं हो रहा है, उसका कारण यही है कि ब्रह्मचर्य व्रतपूर्वक उन्होंने सरस्वती देवीकी आराधना नहीं की।

ब्रह्मचर्यका प्रधान अंग वीर्य-रक्षा है। 'मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात्' विद्यार्थी दशामें वीर्यके बिन्दुपात से वह मृत्युका ग्रास होता है, बिन्दु वीर्यकी रक्षासे उसका दीर्घजीवन होता है। ब्रह्मचारीको आठ प्रकारके स्त्रियोंके दोष छोड़ने लिखे हैं।

दर्शनं स्पर्शनं केलिः प्रेक्षणं गुह्य भाषणम्।
संकल्पो, ध्यवसायश्च क्रिया निष्पत्ति रेवच ॥
एतत्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यं जह्यात्तन्न कदाचन ॥

इसलिये कहा है—

सिद्धे विन्दौ महायत्ने किन्न सिध्यन्ति भूतले।
यस्य प्रसादात् महिमा ममापेतादृशोभवेत् ॥

भगवान् शंकर कहते हैं महान् परिश्रमसे बिन्दु वीर्य (Seimen) सुरक्षित रखनेसे त्रिभुवनमें ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो सिद्ध न हो सके, ब्रह्मचर्यके प्रसादसे मनुष्य ईश्वर तुल्य हो जाता है, मेरी जो महिमा आप देखते हैं, वह ब्रह्मचर्यकी है।

———

नारकीय गति

पहले शिक्षास्तवकमें इस बातको दिखला चुके हैं कि मनुष्य देहमें संचित किये शुभाशुभ कर्मोंके परिपाकसे तिर्यगादि योनि भोगनी पड़ती है, मनुष्य नरकयोनिमें किन-किन कर्मोंसे जाता है, उनसे बचनेके लिये नीचे दर्शाते हैं:—

ब्राह्मण्यं पुण्यमुत्सृज्य ये द्विजा लोभमोहिताः ।
कुकर्माण्यपि कुर्वन्ति ते वै निरयगामिनः ॥१॥
परुषाः पिशुनश्चैव मानिनोऽनृतवादिनः ।
अनिबद्धप्रलापाश्च नराः निरयगामिनः ॥२॥
ये परस्वापहर्तारस्तद्गुणानामसूयकाः ।
परश्रियाभितप्यन्ते ते वै निरयगामिनः ॥३॥
कूपानां च तडागानां प्रपानांच परन्तप ।

जो ब्राह्मण लोभ, मोहसे ब्रह्मण्य कर्मको छोड़कर दुष्कर्ममें लग जाते हैं, वे नरकगामी होते हैं ॥ १ ॥

कठोरवाणी कहनेवाले, कुटिल स्वभाव, असत्यवादी, दम्भी अश्लील वचन कहनेवाले मनुष्य नरकगामी होते हैं ॥ २ ॥

दूसरेका धन लेनेवाले, दूसरेके गुणों पर दूषण लगानेवाले, दूसरों के ऐश्वर्यसे जलनेवाले नरकगामी होते हैं ॥ ३ ॥

रथ्यानां चैव भेत्तारस्ते वै निरयगामिनः ॥४॥
प्राणिनां प्राणहिंसायां ये नराः निरताः सदा ।
प्रव्रज्या वसिताः ये च ते वै निरयगामिनः ॥५॥
यतीनां दूषका राजन् सतीनां दूषकास्तथा ।
वेदानां दूषकाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥६॥
आद्यं पुरुषमीशानं सर्वलोकमहेश्वरम् ।
न चिन्तयन्ति ये विष्णुं ते वै निरयगामिनः ॥७॥
ब्राह्मणानां गवानांच कन्यानां सुहृदांस्तथा ।
येऽन्तरायान्ति कार्येषु ते वै निरयगामिनः ॥८॥

कूप, तालाब, बावड़ी आदि जलके स्थानों तथा मार्गके तोड़नेवाले नरकगामी होते हैं ॥ ४ ॥

नित्य प्राणियोंकी हिंसामें जो तत्पर रहते हैं, संन्यासी होकर गृहस्थी सेवन करनेवाले नरकगामी होते हैं ॥ ५ ॥

यतियों पर दोष देनेवाले, पतिव्रता स्त्री पर दोष लगानेवाले, वेदोंकी निन्दा करनेवाले नरकगामी होते हैं ॥ ६ ॥

जो लोग संसारके विषयोंमें लगकर देवाधिदेव परमेश्वरको स्मरण नहीं करते, वे नरकगामी होते हैं ॥ ७ ॥

ब्राह्मण, गो, कन्या, मित्र इनके लिए जो विघ्न करते हैं वे, नरकगामी होते है ॥ ८ ॥